Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

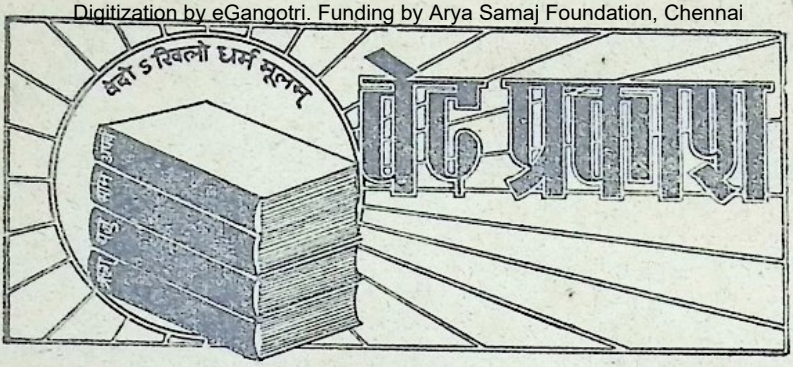

टंकार

—चमूपति

गूँज रहीं, टंकारें ! तेरी कानों में टंकार।
इन्द्र-धनुष पर चढ़ती मौर्वी, पुलकित सुर-संसार।
हिलते ओठों पर मौर्वी के थमा सकल भू-भार॥
हृदय नाचते देव-गणों के जीभ मूर्त्त जयकार।
मथुरा में गायत्रि-गर्भ से, सखि ! आजन्म कुमार॥

प्रकटे ऋषि गोवर्धन-गिरिधर "गो-करुणा-निधि"-सार।
सुनी गई गो-गोप-गवालिन की फिर करुण पुकार॥
दुःशासन औ' दुर्योधन मिल करते हाहाकार।
काँपा काशी का त्रिशूल, जब सुनी वीर-हुंकार॥

कंकर, शंकर-वेश भूल निज, "शिव, शिव" रहे पुकार।
भगे फणी तज चन्द्र-चूड़, थी गद्‌गद उमा निहार॥
हटी शुण्ड-बाधा, माँ सुत-मुख चूम-चूम बलिहार।
सारनाथ का जोगी जागा, जगे शाक्य अवतार॥

जोराष्टर की ज्वाला जागी, जगे मिस्र-मीनार।
यूनानी, रोमक औ' चीनी—'इक' संस्कृति-परिवार॥
भेंट रहे ड्रूइड, इडुका, मय युग-युग के उपहार।
छिपी छुरी, गोली भागी—कह "कायर को धिक्कार"॥

प्रेम-बाँह बन बढ़ती झेंपी इसलामी तलवार।
दास-दाँस टेसू बन फूला ऋषि-तन—अहो बहार॥
सिहर उठा सूलीवाला, सुन यह बलिदान-विहार।
गूँज रही, टंकारें ! तेरी कानों में टंकार॥

बोधरात्रि (शिवरात्रि) की पुण्यतिथि पर पूज्य पिता श्री गोविन्दराम जी को स्मरण करते हुए उनके स्थापित कार्य को सुचारु रूप से चलाने की फिर प्रतिज्ञा करते हैं।

—विजयकुमार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महाभारत का प्रकाशन

पाठकों को यह जानकर महती प्रसन्नता होगी कि महर्षि दयानन्द सरस्वती की निर्वाण-शताब्दी के अवसर पर हम महाभारत का प्रकाशन कर रहे हैं। रामायण के आकार में ८००-८०० पृष्ठ के दो खण्ड होंगे। लगभग १५००० श्लोक सम्पूर्ण महाभारत में होंगे। इस ग्रन्थ का सम्पादन व अनुवाद स्वामी जगदीश्वरानन्दजी सरस्वती ने किया है। इस ग्रन्थ-रत्न का मूल्य ३०० (तीन सौ) रुपये होगा। परन्तु वेदप्रकाश के ग्राहकों को यह ग्रन्थ केवल १५०) में मिलेगा। जो अबतक वेदप्रकाश के ग्राहक नहीं हैं, नये ग्राहक बनेंगे उन्हें तीन वर्ष का वेदप्रकाश का शुल्क २४ रुपये जमा करने पर ही यह ग्रन्थ १५० रुपये में मिल सकेगा। अपनी राशि शीघ्र भेजें। इतने बड़े ग्रन्थ का बार-बार छपना कठिन है। जो अवसर चूक गये उन्हें पछताना पड़ेगा।

चाणक्यनीति दर्पण

[चाणक्यनीति का विशद, सुललित भाष्य]

आज तक चाणक्यनीति पर ऐसा ग्रन्थ नहीं लिखा गया। ग्रन्थ की व्याख्या में वेद, दर्शन, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति आदि ग्रन्थों के सैकड़ों प्रमाण दिये गये हैं। दर्शनों के मर्मज्ञ आचार्य उदयवीरजी शास्त्री ने स्वामी जगदीश्वरानन्दजी द्वारा लिखित ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का अवलोकन कर इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। पुस्तक प्रेस में दी जा रही है। वेदप्रकाश के आकार-प्रकार का लगभग २५० पृष्ठों का ग्रन्थ होगा। इस ग्रन्थ का मूल्य ४० (चालीस) रुपये होगा, परन्तु वेदप्रकाश के ग्राहकों को आधे मूल्य में अर्थात् केवल २० रुपये में मिलेगा। अपनी राशि शीघ्र भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करा लें।

मूल्य में यह कमी स्व० गोविन्दराम हासानन्द की पुण्य स्मृति में की गयी है।

ऋग्वेद सूक्ति-सुधा

जनवरी में छपकर तैयार हो गयी है। इसका मूल्य २० रुपये है। पृष्ठ-संख्या २६८ है। ऋग्वेद की ३१३३ सूक्तियों का विशाल संग्रह है। लेखक हैं आपके चिरपरिचित स्वामी जगदीश्वरानन्दजी सरस्वती।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

॥ ओ३म् ॥

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष ३२, अंक ७] वार्षिक मूल्य : आठ रुपये [फरवरी, १९८३

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ओम् की व्याख्या

स्व० रामसिंह आर्योपदेशक

प्रश्न—ईश्वर के ओंकारादि नामों की विस्पष्ट व्याख्या कीजिए ताकि उसके गुण, कर्म, स्वभावों का हमें यथावत् बोध हो और तदाज्ञानुकूल आचरण कर सुखलाभ उठा सकें ?

उत्तर—'ओ३म्' यह नाम ईश्वर के अन्य नामों की अपेक्षा सर्व प्रकार से अधिक अर्थों का प्रकाशक, ग्राहक व वाचक है, क्योंकि इसमें अ, उ और म् ये तीन अक्षर मिलकर 'ओ३म्' समुदाय हुआ है कि जिसकी एक-एक मात्रा भी कई-कई अर्थों का प्रकाश करती वा बोध कराती है। इसीलिए वेदादि सत्य शास्त्रों में इसको सर्वोपरि, सर्वोत्तम, मुख्य नाम कहा है।

प्रश्न—क्या ईश्वर के अन्य नाम उत्तम नहीं, जो ओ३म् को ही सर्वोपरि, सर्वोत्तम, मुख्य कहा ?

उत्तर—नहीं क्यों, वैसे तो सच्चिदानन्द आदि व एतद्-भिन्न इन्द्र, अर्यमा, यम, सविता, वरुण, मित्र, मरुत् इत्यादि सब ही नाम उसके उत्तम हैं और अनेक वस्तुओं का प्रकाश करते हैं, इसमें सन्देह नहीं; फिर भी वे ओंकार के सदृश नहीं हैं, क्योंकि ओ३म् नाम में कुछ विशेषताएँ ऐसी हैं कि जिनसे अन्य नामों की अपेक्षा इसकी महत्ता अधिक बढ़ी हुई है। इसीसे वेदों, उपनिषदों व योगादि सभी प्रशस्त शास्त्रकारों ने ओंकार शब्द को सर्वोत्तम, कल्याणकारी एवं सुखद सिद्ध किया है।

प्रश्न—वे कौन-कौन-सी विशेषताएँ हैं, कृपया क्रमशः लिखिए तो ?

उत्तर—एक लक्षण तो विशेष यही समझो कि यह निर्विकारी है, इसमें किसी प्रकार से भी कोई विकार नहीं होता अर्थात् अपने स्वरूप में ज्यों-का-त्यों बना रहता है, इसके अतिरिक्त परमेश्वर के अन्य जितने नाम हैं वे इस लक्षण से युक्त नहीं हैं, वे तो सभी विकार-संयुक्त हैं। विकारादि क्यों, कैसे होते हैं ? कदाचित् ऐसी शंका हो तो सावधान होकर समाधान सुनिए। देखिए, अष्टाध्यायी आदि व्याकरण के ग्रन्थों में कुछेक नियम ऐसे हैं कि जिनसे शब्दों में प्रायः विविध भेद हुआ करते हैं और जो-जो शब्दरूपान्तर होते हैं वे ही विकारवान् कहे गये हैं। पर हाँ, कुछ शब्द ऐसे भी हैं कि जिनमें कोई परिवर्तन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नहीं होता, ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं। ये शब्द अव्यय कहलाते हैं। बस, ओ३म् नाम इन्हीं अव्यय-शब्दों में से है कि जिनमें कुछ भी अदल-बदल नहीं होता। यही इसमें लक्षण-वैशेष्य है।

प्रश्न—ईश्वर के अन्य नाम किस तरह विकारयुक्त हैं व ओ३म् क्यों नहीं, इन्हें उदाहरण सहित दिखलाइए ?

उत्तर—ईश्वरवाचक जितने शब्द हैं वे सभी सलिंग हैं। कोई शब्द स्त्रीलिंग, कोई पुल्लिंग और कोई नपुंसक है। अदिति, भूमि आदि ईश्वर के नाम स्त्रीलिंग, इन्द्र, वरुण आदि पुल्लिंग और ब्रह्मन् आदि शब्द नपुंसक हैं। सो ये सभी नाम लिंग, वचन व सब विभक्तियों में परिणत हो जाते हैं, अतः इसीसे विकारयुक्त कहे गये हैं। उदाहरण के लिए ब्रह्मन् शब्द को ही ले लीजिए, इसके विकृत-रूप इस प्रकार होंगे—(१) ब्रह्म, ब्रह्मणी, ब्रह्माणि। (२) ब्रह्म, ब्रह्मणी, ब्रह्माणि। (३) ब्रह्मणा, ब्रह्मभ्याम्, ब्रह्मभिः—इत्यादि। सर्व विभक्तियों में ईदृक् शब्द विकृत होते रहते हैं। बस, इस प्रकार ईश्वरवाचक जितने भी शब्द हैं वे सब ही विकारयुक्त हैं, ओ३म् अविकारी है।

प्रश्न—हाँ तो वह क्या कारण है बतलाओ तो सही, ओ३म् नाम क्यों विकारवान् नहीं ?

उत्तर—ओ३म् शब्द के निर्विकारी होने का कारण केवल यही है कि यह अव्यय है। अव्यय शब्दों से जो विभक्तियाँ आती हैं वे सब लुप्त हो जाती हैं। फिर लुप्त विभक्ति-युक्त पद में कुछ भी परिवर्तन नहीं होता अर्थात् शब्द ज्यों-का-त्यों बना रहता है। निदर्शनार्थ ओ३म् शब्द को नीचे देते हैं, देखिए इसके रूप इस प्रकार से होंगे—(१) ओम्, ओम्, ओम्, (२) ओम्, ओम्, ओम्, (३) ओम्, ओम्, ओम्। बस, इस प्रकार सातों विभक्तियों में कुछ भी रूपान्तर नहीं होता जिससे कि नाममात्र भी भेद आवे। परन्तु इस भाँति ईश्वर के अन्य नाम कहाँ ? उनमें तो अनेक रूपान्तर हुआ करते हैं जैसाकि संकेतार्थ ऊपर कहा गया है। इससे यही सिद्ध हुआ कि जैसे ब्रह्म सर्वथा शुद्धस्वरूप, निर्विकारी, निर्लेप है वैसे ही यह ओ३म् नाम भी विकारों से रहित है। यह एक विशेषता हुई।

प्रश्न—एक निर्विकारी होना ही इसके महत्त्व में विशेषता है या और भी कुछ, यदि और कोई बात है तो वह क्या, बतलाइए ?

उत्तर—एक या दो ही विशेषताएँ क्या ? यदि इसके धात्वर्थ वा अक्षरार्थों को समझोगे तभी इसकी वास्तविक महत्ता ज्ञात होगी, अन्यथा नहीं। अच्छा, इसके धात्वर्थ करने से पूर्व हम आपको एक विशेषता और बतला देवें, क्योंकि यह भी ओ३म् नाम के महत्त्व में एक खास विशेषता है। वह यह कि ओ३म् नाम समुच्चयरूप से केवल एक परमेश्वर ही का वाचक है, अन्य किसी भी भिन्न वस्तु का व्यञ्जक वा प्रकाशक नहीं; परन्तु इसके अतिरिक्त ईश्वर के और जो नाम हैं उनमें यह बात नहीं है। उनमें तो कितने ही नाम ऐसे हैं, जो प्रायः भिन्न सत्तावान् पदार्थों के भी हैं, जैसे—अग्नि, वायु, आदित्य, आकाश, इन्द्र, अजन्मा, अविनाशी इत्यादि। अब देखिए ये नाम ईश्वर के भी हैं और ये ही अग्नि आदि भौतिक पदार्थों व जीव के वाचक भी हैं। परन्तु इस प्रकार से ओ३म् नाम नहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वह तो केवल एक ईश्वर वस्तु का ही वाचक है। उसका वाच्यार्थ विना ईश्वर के अन्य कुछ भी नहीं। वस, यह दूसरी विशेषता हुई। इस प्रकार अनेक महत्त्व-युक्त वा बहुर्थक होने से ही परमेश्वर के सब नामों में ओ३म् नाम को प्रधान वा निज नाम कहा है।

ओ३म् शब्द के धात्वादि अर्थ

प्रश्न—ओ३म् शब्द के अर्थ तो कीजिए, किस प्रकार यह बहु-अर्थवाची है ?

उत्तर—एक तो यह कि जिस धातु से इसकी व्युत्पत्ति हुई है उसके रक्षण, गति, प्रवेपण आदि प्रायः बहुत अर्थ किये गये हैं और शब्द में अर्थ भी वे ही हुआ करते हैं जो उसकी धातु के हों। ओ३म् शब्द 'अव' धातु से, जिसके कि धातु-पाठ में सबसे अधिक अर्थ हैं, 'मन्' प्रत्यय होकर सिद्ध हुआ है कि जिसके सर्वरक्षक, सर्वाधार, सर्वत्र परिपूर्ण और बृहस्पति आदि अर्थ होते हैं। दूसरे, इसकी पृथक्-पृथक् मात्राएँ भी भिन्न-भिन्न बहुत-से अर्थ प्रकाशित करती हैं।

प्रश्न—अकारादि मात्राओं से कौन-कौन अर्थ प्रकट होते हैं ?

उत्तर—अकार से ब्रह्म, उकार से जीव और मकार से प्रकृति; तथा अकार से विराट्, अग्नि, विश्वादि, उकार से हिरण्यगर्भ, वायु, तैजस आदि और मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञ आदि। परन्तु आदि शब्द से कतिपय अन्य अर्थ भी ग्रहण करना, जैसे—विष्णु, आत्मा, अव्यक्त इत्यादि नामार्थ अकार आदि मात्राओं से गृहीत वा प्रकाशित होते हैं।

प्रश्न—किस कारण से ब्रह्म, विराट् आदि नाम अकारादि मात्राओं से प्रकाशित होते हैं ?

उत्तर—कारण यह है कि अकार आदि मात्राओं के अर्थों के सदृश ही जिन-जिन नामों के अर्थ मिलेंगे वे-वे सब नाम अकारादि मात्राओं से संगृहीत होंगे। सो यहाँ ब्रह्म, विराट् आदि नामों के अर्थ अकारादि मात्राओं के अर्थों के समान ही कुछ मिलते-जुलते हैं। इसी कारण ब्रह्म, विराट् आदि नाम अकारादि मात्राओं से व्यक्त (प्रकट) होते हैं।

अकार-मात्रा और ब्रह्म शब्द

प्रश्न—अकारमात्रा के अर्थ कर तद्वत् ब्रह्म शब्द के अर्थ दिखलाइए ताकि आपका यह कथन, कि अकार से ब्रह्म गृहीत होता है, सिद्ध हो ?

उत्तर—**प्रथम** लक्षण तो अकार अक्षर और ब्रह्म का यही मिलता है कि जैसे अकार सब अक्षरों में आदि अर्थात् प्रथम अक्षर है वैसे ही परब्रह्म परमेश्वर भी इस सम्पूर्ण उत्पन्न हुई वा कार्यरूप सृष्टि में निमित्तकारण-रूप आदि वा प्रथम है। अथवा सब पदार्थों से अत्यन्त सूक्ष्म रूप आदिम समझिए, परन्तु देश-काल से नहीं।

द्वितीय—जिस तरह समस्त अक्षरों में अकार मिला हुआ रहता है दिखलाई नहीं देता, प्रत्युत क, ख, ग इकार इत्यादिक ही दृष्टिगत होते हैं अकार नहीं, वैसे ही जगदाधार, जगदीश्वर भी सम्पूर्ण संसारस्थ पदार्थों में सर्वत्र प्रविष्ट हुआ अदृश्य हो रहा है अर्थात् दिखलाई नहीं देता। दर्शन, स्पर्शन ककारादिवत् केवल प्राकृतिक वस्तुओं के ही होते हैं, ईश्वर के नहीं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तृतीय—जैसे विना अकार अक्षर की सहाय वा व्यापकता के किन्हीं भी अक्षरों की स्थिरता वा उनकी अभिव्यक्ति अर्थात् प्रकाशन नहीं होता, वैसे ही बिना परम-पिता परमात्मा के इस सम्पूर्ण जगत् का भी न कोई आश्रय है न कोई प्रकाशक ही है। वही सर्वत्र ओत-प्रोत हुआ स्वाश्रय में रक्खे हुए इस सर्वजगत् का सृजनहार है।

चौथे—अकार अक्षर में एक अर्थ पूर्णत्व भी है अर्थात् इसमें किसी तरह से भी कोई कमी नहीं है। कमी तो दूर यह तो इसके अलावा समस्तता, विभुता और भरपूरता आदि अर्थों का द्योतक है। बस, जैसे यह पूर्ण है वैसे ही परिपूर्ण परमेश्वर भी सम्पूर्ण है अर्थात् उसमें भी किसी प्रकार से कोई न्यूनता नहीं, सर्वशक्तियों से भरपूर है।

पंचम—अकार अक्षर में यह विशेषता है कि यह समस्त स्वरों व व्यञ्जनों में सर्वत्र व्याप्त हो रमा हुआ है अर्थात् कोई स्वर व व्यञ्जन ऐसा नहीं कि जिसमें अकार की व्यापकता न हो, ऐसे ही विश्वात्मक विष्णु भी सर्व जीवों व प्रकृति वा प्राकृतिक वस्तुओं में सब जगह निरन्तर व्यापक हुआ रम रहा है अर्थात् कोई वस्तु व स्थान ऐसा नहीं जो ब्रह्म की व्यापकता से रिक्त हो।

छठे—जिस तरह अकार अक्षर के उच्चारण होने में दूसरे किसी स्वर या व्यंजन की सहायता आवश्यक नहीं, बल्कि स्वयमुच्चरित होता तथा अन्य सभी अक्षरों का प्रकाशक है, वैसे ही ज्योतिःस्वरूप जगज्जीवन भी अपने से भिन्न की अपेक्षारहित स्वयं प्रकाशमान तथा अन्य समस्त विविध जगत् का बहुभाँति प्रकाशक है।

सातवें—जिस प्रकार अकार अक्षर में कुछ भी विकार नहीं होता अर्थात् जैसे इकारादि यत्किञ्चित् व ककारादि सर्वथा ही विकृत हो जाते हैं वैसा विकार इस अकार अक्षर में नहीं। बस इसी तरह से शुद्धस्वरूप अपरिणामी ईश्वर भी सर्वथा विकारों से रहित है अर्थात् न वह विकारी था, न है और न होगा। वह सदा एकरस, निर्विकारी, निर्लेप रहता है।

इस प्रकार अकार अक्षर के अर्थ ब्रह्म से और ब्रह्म के अकार से मिलते-जुलते हैं अतः ब्रह्मवस्तु वाच्य की अकारमात्रा ही वाचक कही गई है।

अकारार्थों पर एक विशेष प्रश्न

प्रश्न—ब्रह्म शब्द के अर्थों के साथ जो अकारार्थों की समताएँ दिखलाई हैं यह सब-कुछ ठीक है, मैं मानता हूँ परन्तु अकार अक्षर में ये अर्थ हैं कैसे, किस तरह आपने निकाले, यह नहीं दिखलाया और न इनपर कोई हेतु ही दिये। अतः इस बात को अब सिद्ध कीजिए अर्थात् सहेतुक व्याख्या दीजिएगा। और साथ ही यह भी दिखलाइए कि अकार अक्षर के किस-किस अर्थ से ब्रह्म के कौन-कौन नाम ग्रहण किये वा जाने जाते हैं ?

प्रथम अर्थ के आदित्व में हेतु

अकार अक्षर में प्रथमत्व जो अर्थ है इसका कारण है उसका अपना उच्चारण-स्थान, क्योंकि वर्णों के उच्चरित होने के कण्ठ, तालु, मूर्द्धादि जो अष्ट स्थान हैं उन सबमें आदि अर्थात् पहिला स्थान कण्ठ है जहाँ से कि अकार का उच्चारण हुआ है। यद्यपि वहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

से कुछेक अन्य वर्ण भी उच्चरित होते हैं तथापि उन सबमें आद्यध्वनि अकार अक्षर की ही है, अन्य वर्ण तो इसी की सहायता से इसके पश्चात् उत्पन्न होते हैं पहिले नहीं, पहिले अभिव्यक्ति इसी की है। इसी कारण अकार अक्षर वर्णमाला के सब अक्षरों में प्रथम लिया गया है और यह वेद व संस्कृत लिपि में ही नहीं, बल्कि इनकी बेटी-पोती जो इतर भाषाएँ हैं उनमें भी किसी-न-किसी रूप में अकार को प्रथम ही लिया है, यथा—देवनागरी के अ, आ, इ आदि में 'अ', अंग्रेजी के ए, बी, सी आदि में 'ए' और उर्दू भाषा के अलिफ़, बे, पे आदि में 'अलिफ' इत्यादि। यहाँ इन उदाहरणों में देवनागरी का अकार अक्षर तो ज्यों-का-त्यों उसी रूप में है, कुछ नहीं बदला। परन्तु अंग्रेजी और उर्दू के ए, अलिफ, अकारों का रूपान्तर अवश्य हैं। यद्यपि रूपान्तर भले ही हों पर अर्थ वही अकार अक्षर का देते हैं, अर्थ में अन्तर नहीं। बस, उक्त हेतु व निर्दिष्ट उदाहरणों से यह सिद्ध हुआ कि अकार अक्षर में जो प्रथमत्व है यह सर्वसम्मत सत्य है, अतः इसके प्रथमपने से ही आदिगुरु, सर्गारम्भक, जगन्निमित्त कारण इत्यादि नाम ब्रह्म के प्रकाशित होते हैं, क्योंकि जैसे अकार अक्षर में प्रथमपना है वैसे ही इन नामों के अन्दर भी प्रथमत्व प्रतीत होता है। परन्तु यह प्रकृति और जीव की विद्यमानता पर ही सृष्टि की उत्पत्ति के निमित्त भासित है, अन्यथा नहीं।

द्वितीय अर्थ के गुप्तत्व में हेतु

द्वितीय अर्थ में अकार अक्षर का 'गुप्तरूप अर्थात् दिखलाई न पड़ सकना' यह जो बतलाया गया वास्तव में ठीक है, क्योंकि जिस समय अकार अक्षर किसी अन्य वर्ण से मिलता है तब यह अपनी 'अ' इस शक्ल में रहा हुआ संयुक्त नहीं होता, वरन् '।' इस आकृति में होकर मिलता है, यही कारण है इसके दिखलाई न देने का। वैसे तो '।' यह आकृति अकार अक्षर का मूल स्तम्भ है और सभी अक्षरों का आधाररूप हुई स्वयं सबमें स्थित है, परन्तु फिर भी '।' यह अकार-चिह्न सब अक्षरों में होते हुए भी गुप्तरूप धारण किये हुए है। इसी हेतु अल्प बुद्धियों से अदृश्य अर्थात् अज्ञात है। हाँ, शब्द-तत्त्वज्ञों की दृष्टि में अकार शब्द का '।' यह मूल स्तम्भ सब अक्षरों में भानुवत् भासित है, इसमें सन्देह नहीं। पर बालकों को बचपन में पढ़ते हुए इस बात का कुछ भी ज्ञान नहीं होता कि क, ख व इकार आदि सभी अक्षरों में अकार-ध्वनि व उसका बोधन करानेवाली '।' यह शक्ल भी मिली हुई है वा नहीं। ज्यों-ज्यों बच्चों को शब्दों का बोध होता जाता है त्यों-त्यों उन्हें ज्ञान होने लगता है और वे मान लेते हैं कि हाँ, सचमुच सभी अक्षरों में अकार मिला हुआ है। बस, इसी तरह से अकाररूप जगदीश्वर भी सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, नदी, पहाड़, अग्नि, जल, बिजली, सर्प, सिंह, मयूर इत्यादि सकल स्वर-व्यञ्जनरूप जड़-चेतन पदार्थों में मिला हुआ है और अज्ञानियों की दृष्टि में अदृश्य हो रहा है अर्थात् दिखलाई नहीं देता। परन्तु शब्द-तत्त्वज्ञों की नाईं बुद्धिमान् पुरुषों से अदृश्य अर्थात् अज्ञात नहीं, अर्थात् जैसे शब्दार्थ-सम्बन्ध जाननेवालों ने सभी अक्षरों में प्रत्यक्ष अकार को पा लिया, वैसे ही इन सब जीव और प्रकृति तथा प्राकृतिक वस्तुओं में सुबोध मनुष्यों ने भी शास्त्राध्ययन व मनन द्वारा ब्रह्म प्राप्त किया है। सो इस द्वितीय अर्थ में अकार अक्षर का जो गुप्तत्व है

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

 Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यह ठीक है। इसी से अन्तर्हित, अन्तर्यामी, अदृश्य, अन्तर्वर्त्ती और मर्मज्ञ आदि नाम ब्रह्म के लिये गये हैं।

तृतीय अर्थ के आधारत्व में हेतु

तृतीय अर्थ में अकार अक्षर की ही शक्ति से समस्त अक्षरों की स्थिति व उनका प्रकाशित होना कहा गया है, यह कहाँ तक ठीक है इसपर कुछ विचार किया जाता है, आप दत्त-चित्त होकर मनन कीजिए। देखिए, अभी हम ऊपर कह आये हैं कि '।' इस चिह्न के विना कोई अक्षर नहीं, व्यंजन तो क्या स्वर भी नहीं हैं। अर्थात् '।' यह अपने इसी रूप में कम या अधिक सभी अक्षरों में मिला हुआ है और अकार अक्षर का मूलरूप कहलाता है। अब यह देखना है कि यह अकार अक्षर का मूलरूप कैसे है, सो सुनिए। जिस समय हम 'अ' इस ध्वनि का उच्चारण करते हैं तब हमें दो भाव विदित होते हैं। एक जिह्वा का सीधी समरेखा पर होना और दूसरे मुख चारों ओर से समान खुला हुआ रहना। इनमें से पहिले भाव को ज्यों-का-त्यों दिखलानेवाली जो शक्ल बनी वह इस प्रकार से हुई कि मुखमार्ग से अकाररूपी ध्वनि मूलस्थान से लेकर बाहर तक आ··· करती हुई '।' इस आकृति में होकर निकली अर्थात् यह आकृति उस भाव से या वह भाव इस आकृति से ज्यों-का-त्यों मिलता है, इसमें कुछ अन्तर नहीं। बस, यही है वह आकृति जो अकार अक्षर का मूलरूप कहलाती और प्रत्येक अक्षर के चित्र में विराजमान है। इसी से तो हम ऊपर दर्शा चुके कि विना अकार अक्षर के कोई अक्षर स्थिर नहीं, न उनकी प्रसिद्धि ही हो सकती है। देखिए! जब कोई अक्षर बिना स्वर का दिखलाया वा हलन्त लिखा जाता है तो '।' यही स्तम्भ लँगड़ा किया जाता है। यथा त्, प् आदि। इसी भाँति जब कोई मात्रा (स्वर) किसी अक्षर में लगाई जाती है तो वह भी इसी के ऊपर लगाई जाती है यथा—के, की, कू आदि।

प्रश्न—क्या इसी प्रकार के कोई और भी उदाहरण दिखला सकते हैं?

उत्तर—हाँ-हाँ, क्यों नहीं? देखिए जब कोई अक्षर किसी अक्षर में संयुक्त किया जाता है तो जो अक्षर आधा होता है उसमें '।' यह स्तम्भ लगाये बिना ही दूसरा अक्षर जोड़ते हैं। यदि दूसरा भी आधा लिखना होता है तो तीसरे में अकार-स्तम्भ मिलाते हैं यथा—'(क) न्या', (वि) न्ध्या' आदि। बस, बहुत उदाहरणों में से क्या लोगे, एक लीला यह और देख लीजिए कि सभी अक्षरों की शक्लें चाहे आड़ी, तिरछी, ऊपर, नीचे कहीं से मिली हों, पर हैं संयुक्त '।' इसी मूल स्तम्भ से, यथा क, ऋ, फ इत्यादि में मध्यस्थ रेखा। अब यह प्रक्रिया आज की नहीं है बल्कि पुरानी से भी पुरानी अर्थात् जो वैदिक लिपि है उसमें भी यही कौशल पाया जाता है। इसलिए यह झगड़ा तय हो गया और सिद्ध हो गया कि अकार का मूल रूप '।' यही स्तम्भ है, क्योंकि दीर्घ के लिए तो यह आता ही है। साथ ही यह भी ज्ञात हो गया कि दूसरे अक्षरों के साथ भी यह इसी प्रकार का पाया जाता है। पर असंयुक्त अवस्था में '।' इस रूप से नहीं वरन् 'अ' ऐसा लिखा जाता है। इसीलिए हमने इसके उच्चारण करने के विषय में दो बातें कही थीं अर्थात् (१) जिह्वा का सीधी सम रेखा पर होना, जिसकी आकृति व उसका कार्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दिखाया जा चुका और (२) मुख चारों ओर से समान खुला हुआ रहना, इसकी आकृति व इसका कार्य अभी आगे चलकर दिखाते हैं। उक्त आकृति द्वारा यह सिद्ध हो गया कि अकार अन्य सभी अक्षरों के लिए अवश्य ही आधारस्वरूप है। इसी कारण निम्न नाम इस लक्षण से जाने गये हैं—जगद्धर्ता, प्राणाधार, लोकाश्रय, सर्वाधार, सर्वस्थिति स्थान, जगदाधार, धराधर, और आश्रयदाता इत्यादि।

चतुर्थ अर्थ के पूर्णत्व में हेतु

अकार-ध्वनि के उच्चारण-विषयक जो दो भाव हमने ऊपर दिखलाए हैं, उनमें से एक की व्याख्या तो आप पढ़ ही चुके, रहा द्वितीय कि 'मुख चारों ओर से समान खुला हुआ रहना' इस भाव को ज्यों-का-त्यों दिखलानेवाली जो आकृति चाहिए वह 'O' यह आकृति होनी उचित है, क्योंकि जैसे उक्त भाव सर्वतः समवर्ती है वैसे ही यह आकृति भी वर्तुलाकार अर्थात् सब ओर से समान है। अधिक कहने से क्या, सच पूछिए तो यही आकृति इस द्वितीय भाव को यथातथ्य दिखलाने में कुछ कसर नहीं रखती। हम अकार के पूर्व-अर्थ करने में जहाँ उसकी पूर्णता और व्यापकता तथा अखण्डरूपता बतला आये हैं वहाँ उसके वैज्ञानिक कार्यों के कारण ही हमें उसका वह अर्थ करना पड़ा है। अब आप यदि पूर्ण, सर्वव्यापक, अखण्ड आदि भावों का चित्र बनवाएँ तो उपर्युक्त शून्याकार से अच्छा चित्र दूसरा न हो सकेगा। चित्र की ओर देखते ही उसकी आकृति अपनी पूर्णता, व्यापकता और मुखाकृति दोनों बातों को एक-साथ कह देती है। अब यदि दोनों भावों के चित्रों को अर्थात् पहिले भाव का '।' यह मूल स्तम्भ और द्वितीय भाव की O यह गोलाकृति इन दोनों को इकट्ठा करें तो 'OI' यह रूप होता है और अपने-अपने अभिप्राय का अर्थ अपने इस रूप से कहने लगता है। बस, जिन ऋषियों ने इन अक्षरों की शक्लें निर्माण कीं, उन्होंने ऐसे ही ऐसे भावों को विशेष ध्यान में रखते हुए सब अक्षरों (ध्वनियों) की आकृतियाँ रची हैं और उनके अर्थ भी इन आकृतियों से बहुत-कुछ सम्बन्ध रखते हैं। यहाँ अकार अक्षर में पूर्णता का अर्थ दिखलानेवाली जो आकृति है वह यही उपर्युक्त गोलाकृति है, परन्तु इससे भी अधिक इसकी ध्वनि को समझिए।

प्रश्न—तो फिर इसकी ध्वनि से किस तरह पूर्णता का बोध होता है इसपर कोई दृष्टान्त देकर समझाएँ?

उत्तर—उदाहरणार्थ 'इ' 'उ' 'ए' इन्हीं ध्वनियों को ले लीजिए और इनका मननपूर्वक उच्चारण कर 'अ' इस ध्वनि से मिलाइए। देखना, फिर इसकी पूर्ण अपूर्णता का कितना साफ पता लगता है। अर्थात् 'इ' की ध्वनि नीचे की ओर, 'उ' की ध्वनि ऊपर की तरफ और 'ए' की ध्वनि एक तरफ तिरछी-सी प्रतीत होती है। भाव यह है कि ये सब ध्वनियाँ अल्प, न्यून, आड़ी, तिरछी, एकदेशी और अपूर्ण हैं इसमें नाममात्र भी सन्देह नहीं, परन्तु 'अ' इस ध्वनि को देखिए, बतलाइए इसमें ऊँचा, नीचा, आड़ा, तिरछा, एकदेशी आदि भाव कहाँ हैं? प्रत्युत इसकी ध्वनि सब ओर से परिपूर्ण, व्यापक प्रतीत होती है। इसीसे तो उपर्युक्त आकृति ही इसका पूर्ण बोध कराने के लिए ऋषियों ने नियुक्त की। बस, अधिक क्या लिखें! सत्य मानिए अकार अक्षर में पूर्णत्व अर्थ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अवश्य है, यदि नहीं होता तो **'आलभ' 'आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तम्' 'आसमुद्रात्तु पश्चिमात्'** इत्यादि पदों के दीर्घ अकार में पूर्णत्व अर्थ कहाँ से आता ? क्योंकि दीर्घ अकार ह्रस्व से कोई विशेष भिन्न नहीं। ह्रस्व अकार ही द्विमात्रिक दीर्घ कहाता है। अतएव सिद्ध हुआ कि अकार अक्षर पूर्णतायुक्त अवश्यमेव है। इसीलिए निम्नलिखित नाम इस लक्षण से ग्राह्य समझे गये हैं—

यथा—पूर्ण, परिपूर्ण, सम्पूर्ण, अखण्ड, निरवयव, निरन्तर, अद्वितीय, अन्यून, सर्वशक्तिमान्, सामर्थ्यस्वरूप, सर्वसामर्थ्यप्रद और सर्वत्र समवर्त्ती इत्यादि।

पञ्चम अर्थ के विभुत्व में हेतु

इस अर्थ में अकार अक्षर की व्यापकता पर कोई अपूर्व हेतु दें यह आवश्यक नहीं जान पड़ता, क्योंकि पिछले ही कई हेतुओं से इसका विभुत्व सिद्ध हो जाता है। इसलिए यहाँ उन्हीं का संकेत दे इसकी व्याप्ति दिखलाते हैं। हाँ, यदि कहीं आवश्यकता हुई तो कुछ और भी बतलायेंगे। अच्छा ध्यान दीजिए ! देखिए, आधार व पूर्णत्व-निश्चायक जो हेतु हैं वे ही यहाँ अकार अक्षर की विभुता में हेतु वा इसके साधक समझिए क्योंकि अब इसकी व्याप्ति में संशय ही क्या जबकि अकार सब अक्षरों का आधार व पूर्ण सिद्ध हो चुका। सब अक्षरों का आधार वही तो हो सकता है जो पूर्ण हो और सबमें हो। जब सबमें हुआ तो व्यापक होना अनिवार्य ठहरा। अथवा यों समझ लीजिए कि जो पूर्ण होगा वही सबका आधार हो सकता है और जो सबका आधार होगा वह सबमें हुए बिना हो नहीं सकता। जब सबमें हुआ तो व्यापक स्वयं सिद्ध हो गया, क्योंकि जों सबमें हो उसीका नाम तो सर्वविभु है। बस, अधिक लिखने से क्या, जबकि यह सहेतु सम्यक्तया दिखलाया जा चुका कि अकार अक्षर की '।' यह मूल रेखा कुल अक्षरों में उनका आधारभूत हुई नित्य विराजमान है तो क्या अब भी इसके विभुत्व पर कुछ संदेह रहा ? यदि नहीं तो यह सिद्ध हुआ कि अकार अक्षर सर्व अक्षराधार तथा पूर्ण होने से व्यापक भी है।

प्रश्न—संदेह सिर्फ यही होता है कि इकारादि स्वरों में भी आपने इसकी व्याप्ति बतला दई, यह ठीक नहीं क्योंकि व्यंजनों में तो सब कोई मानते आये और यह है भी ठीक, कारण कि जिस समय कोई अक्षर स्वर से रहित दिखलाया जाता है तो वह ् इस चिह्न से केवल व्यंजन ही दिखाया जाता है, आजतक किसी ने स्वर को नहीं दिखलाया। पर आपकी यह नई कल्पना कि इकारादि स्वरों में भी अकार व्यापक है, कैसे ठीक मानें ? अतः इसपर कुछ साफ लिखिए।

उत्तर—नई हो चाहे पुरानी, इस बात से क्या मतलब ! जो बात यथार्थ हो वह मान ही लेनी उचित है, क्योंकि किसी वस्तु वा बात को ज्यों-की-त्यों जाने-माने बिना सच्चा सुख, शान्ति और कल्याणादि नहीं हो सकते। इसलिये जो बात जैसी है उसको वैसी अवश्य माना जाए। हमने ऊपर अकार अक्षर की सर्व-अक्षरान्तर्गत जो व्याप्ति कही, जिसे हम अभी स्वरों में भी दिखलायेंगे, सच मानिए यह बिल्कुल सही, सच्ची और पुरानी से भी पुरानी बात थी। पर न जाने आप किस कारण से नई समझ बैठे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसे नई कल्पना समझना या अकार अक्षर की व्यापकता केवल व्यंजनों में ही मान, इकारादि स्वरों में न मानना यह आपकी और आप जैसे विचार रखनेवालों की भूल है जोकि विना विशुद्ध बुद्धि हुए नहीं मिट सकती। अच्छा, लीजिए अब हम आपको बतलाये देते हैं। देखिए स्वरों में ही ए, ओ, ऐ, और औ ये चार स्वर तो अकार से ही इकार उकार का योग होकर उत्पन्न हुए हैं। यथा—अ इ मिलकर ए, अ उ मिलकर ओ, अ ए मिलकर ऐ और अ ओ मिलकर औ। इसी प्रकार दीर्घ अकार भी, अर्थात् ह्रस्व अकार ही द्विगुण दीर्घ समझिये। लो देखिए, इन स्वरों में तो व्यंजनों के समान ही अकार साफ-साफ प्रकट है। यही नहीं वल्कि इनका उच्चारण कीजिए और देखिए 'अ' यह ध्वनि भी बुलती है कि न ?

प्रश्नकर्ता—हाँ हाँ, बुलती सी तो मालुम हुई।

उत्तर—वस तो विल में सर्पिणी थी तो निकलती प्रतीत हुई, यदि नहीं होती तो निकलना व प्रतीत होना कहाँ से होता ? अब वोलिए, व्यंजनों में तो आप मानते ही हैं और एकारादि स्वरों में दिखला ही दिया। रहे सिर्फ इ, उ, ऋ, ऌ ये चार स्वर, सो क्या इनमें ही अकार न होगा ? नहीं, यह वात नहीं है व्यापक इनमें भी है।

प्रश्न—वेशक् ! उपर्युक्त स्वरों में तो अकार अक्षर के होने में अब सन्देह नहीं रहा। हाँ, यदि इकारादि शेष स्वरों में भी उन्हीं की तरह स्पष्ट दिखलाएँ तथा हमारे ऊपर दिए हेतु का भी यथावत् निवारण करें तव तो निस्सन्देह अकार अक्षर के सर्व अक्षरव्यापी वा ब्रह्म के व्याप्ति-गुण का उदाहरण होने में कुछ चूक नहीं, परन्तु स्मरण रहे यदि ऐसा नहीं हुआ तो आपका किया हुआ पंचम अर्थ व्यर्थ व उससे साध्य ब्रह्म-व्याप्ति-गुण सिद्ध नहीं होगा।

उत्तर—हाँ, यह सत्य है, यदि अकार अक्षर सर्व अक्षरवर्ती न होता तो आपका यह "परन्तु स्मरण रहे, आदि" वाक्य सर्वथा ही सत्य होता, किन्तु अब नहीं क्योंकि एकारादि स्वरों पर्यन्त तो आप स्वीकार कर ही चुके। अवशिष्ट इकारादि स्वरों में जिस प्रकार से अकार है, यहाँ देखिए। इनमें यों समझिए कि आकाश का गुण जो शब्द है वह अकाररूप से नित्य सर्वत्र व्याप्त है और उसीमें इकारादि ध्वनियाँ विद्यमान हैं। यद्यपि ये ध्वनियाँ अकार-ध्वनि से भिन्न और उसीकी तरह स्वयमुच्चरित होती तथा उसके सहित मूलरूप कहलाती हैं, तथापि अकार-ध्वनि की व्यापकता से रिक्त नहीं हैं। क्योंकि जिस समय मन वागिन्द्री से काम लेना चाहता है उस समय उससे प्रेरित हुई प्राणवायु को प्रथम कण्ठ-स्थान में आना पड़ता है और वहाँ आते ही तत्काल जो ध्वनि उत्पन्न होती है वह अकार नामक कही जाती है, पश्चात् उसी अकार-ध्वनि से मिश्रित भिन्न-भिन्न स्थान-प्रयत्न-भेदों के कारण अनेक अक्षर उत्पन्न हुए। उदाहरणार्थ 'इ' को ही ले लीजिए। देखिए, अकार के वाद ही उसके समीप 'इ' का उच्चारण है। 'इ' स्वयं कुछ नहीं वही 'अ' नीचे की ओर जा, निचले ओष्ठ की सहायता से 'इ' रूप को प्रकट करता है; वैसे ही ऊपर की ओर जाकर, ऊपरले ओष्ठ की सहायता से उकार-रूप को दिखलाता है। किवहुना, यदि आप ओष्ठ वन्द कर अकार अक्षर का उच्चारण करें तो 'पकार' और 'क' स्थान में जिह्वा लगाकर अकार को बोलेंगे तभी 'क' सुनाई पड़ेगा, अन्यथा नहीं। ऐसे ही सब

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अक्षरों को समझना चाहिए। तात्पर्य यह कि समस्त अक्षर, समस्त शब्दसमूह और सारा ध्वनिसमूह उसी अकार अक्षर की शक्ति से व्याप्त वा ओत-प्रोत है। इसीलिए तो अकार-अक्षर का अर्थ भी सर्व, पूर्ण, व्यापक, आधार, अव्यय, अखण्ड आदि होता है।

प्रश्न—यदि यहाँ कुछ थोड़ा और प्रकाश डाल सको तो और भी लिखियेगा ताकि साध्य विषय विशेष स्पष्ट हो जाए ?

उत्तर—बहुत अच्छा, लीजिएगा ! देखिए अकार अक्षर की मूल रेखा, जिसका कि ऊपर विस्पष्ट वर्णन हो चुका वह भी इकारादि स्वरों में विद्यमान है अर्थात् इकारादि उससे रहित नहीं हैं, उनमें वह मौजूद और ज्यों की त्यों दिखलाई देती है। हाँ, इतनी बात तो जरूर है कि ऋ और ऌ में पूर्ण रूप से और इ तथा उ में कुछ कम है। इसको यों समझिए कि 'इ' के लहरिया से ऊपर 'इ' में और 'उ' के निचले मोड़ से ऊपर 'उ' में जो रेखा है अर्थात् ऊपर से जो थोड़ी नीचे को आई है वही अकार-रेखा कही जाती है। पर कम क्यों है यहाँ यह प्रश्न उठाना उचित नहीं, क्योंकि यह विषयान्तर है और यहाँ केवल अकार-ध्वनि व उसकी शक्ल का सर्वव्यापी दिखाना ही प्रयोजन है।

प्रश्नकर्ता—अच्छा इस प्रश्न को न सही, जाने दीजिए और यह भी माना कि अकार-ध्वनि की मूल रेखा भी सबमें है, इसमें भी अब सन्देह नहीं रहा।

उत्तर—जब सबमें है और सन्देह नहीं रहा तो अकार-ध्वनि भी सब अक्षरों में है, क्योंकि जिसकी मात्रा जहाँ होगी वहाँ उसकी ध्वनि अवश्य होगी। यथा—की पू व ख फ आदि अर्थात् क् प् में ई की 'ी ू' ये मात्राएँ हैं तभी तो उनमें इनकी ध्वनियों का उच्चारण होता है। यदि मात्राएँ न होतीं तो इनकी ध्वनियाँ भी न हो सकती थीं, क्योंकि ख फ में ई ऊ की मात्रा नहीं तो इनकी ध्वनियों का भी अभाव है। बस, ठीक इसी प्रकार 'अ' को समझिए अर्थात् अकार अक्षर की '।' यह मात्रा किन्हीं अक्षरों में न होती तो इसकी ध्वनि भी न होती। पर जब इकारादि सभी अक्षरों में यह सिद्ध हुई और आप भी सहर्ष स्वीकार कर चुके तब इसकी ध्वनि सबमें क्यों नहीं ? यदि ऐसा कहें तो ठीक नहीं, क्योंकि ध्वनि भी सबमें है। यह तो हो ही नहीं सकता कि मात्रा हो और ध्वनि न हो।

प्रश्न—क्यों जी ! व्यंजनाक्षरों में जैसी अकार-ध्वनि स्पष्ट बुलती हुई प्रतीत होती है वैसी इकारादि स्वरों में नहीं मालूम होती, इसमें क्या कारण है ?

उत्तर—बात यह है कि जैसे व्यंजनों के अन्त में अकार बुलता हुआ रह जाता है वैसे यहाँ इकारादि के अन्त में यह नहीं बुलता, वरन् आदि में बुल रहता है। अर्थात् व्यंजनों में अकार अक्षर की ध्वनि के साफ-साफ प्रतीत होने का कारण केवल यही है कि उनमें व्यंजन-वर्ण प्रथम बुलकर अन्त में अकार ही बुला करता है। परन्तु स्वरों में यह बात नहीं है, स्वरों में तो अकार-ध्वनि पहिले और और अन्त में इकारादि स्वर ही बुलते रहते हैं जिससे कि वही प्रतीत होते हैं। बस, यही एक कारण है, इसीसे व्यंजनापेक्ष अकार स्वरों में कुछ कम प्रतीत होता है, वास्तव में कम नहीं है, व्यापक सबमें है।

प्रश्न—अच्छा, तो हमारे उक्त हेतु का अभी तक आपने कुछ निराकरण नहीं किया, उसका क्या उत्तर होगा, बतलाएँ ?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उत्तर—उसका यही उत्तर समझिये कि संयोगी वर्णों अर्थात् जिन-जिन वर्णों का परस्पर एक-दूसरे से संयोग होता है उन्हीं में आवश्यकतानुसार यह ' ् ' चिह्न प्रयुक्त हुआ करता है। असंयोगी अर्थात् जो कभी संयुक्त नहीं होते उनमें उक्त चिह्न नहीं दिखाया जाता। व्यंजनों में इसलिए दिखलाया गया है कि वे परस्पर संयुक्त होने अर्थात् एक-दूसरे से मिलने के स्वभाव से युक्त हैं जैसेकि प्रकृति के परमाणु। परन्तु स्वर सर्वथा इनके विपरीत वर्त्तते हैं अर्थात् स्वरों में यह खासियत नहीं कि २, ३ वा ५ स्वर स्व-स्व आकृतियों में ज्यों-के-त्यों स्थित हुए संयुक्त हो जावें। हाँ, यदि व्यंजनों की तरह ये भी संयोगी होते तो अवश्य उक्त चिह्न इनमें भी प्रयुक्त होता किन्तु स्वर संयोगी नहीं, इसलिए नहीं हुआ। बस, यही एक कारण है इसीलिए इकारादि स्वरों में यह ' ् ' चिह्न प्रयोग में नहीं लाया गया। अन्यथा आपकी समझवाला यह कारण कि इनमें अकार ही नहीं, सो बात नहीं। अतएव सिद्ध हुआ कि अकार अक्षर के सर्व अक्षरवर्ती होने में अब कुछ ननु-नच नहीं। इसीसे व्यापक, सर्वव्यापक, विष्णु, विश्वात्मा, परमात्मा, विश्वव्यापी और विभु इत्यादि नाम ब्रह्म के प्रकाशित हुए समझिए।

षष्ठ अर्थ के स्वयमुच्चरित होने में हेतु

अकार अक्षर के स्वयमुच्चरित होने में हेतु यही है कि उसकी उत्पत्ति का स्थान और उसकी ध्वनि अन्य सब स्थानों व ध्वनियों से प्रथम है, क्योंकि उसके पूर्व न कोई स्थान और न कोई वर्णात्मक ध्वनि ही है जो अकार अक्षर का उच्चारण कराने में सहायक हो सके। प्रत्युत वही आदि में होने के कारण सर्व वर्णों की उत्पत्ति, अभिव्यक्ति वा प्रकटता में एक हेतु है, अथवा यों समझ लीजिए कि जैसे व्यंजनों की उत्पत्ति के लिए जिह्वा का कण्ठादि स्थानों से संयुक्त होना तथा अकार-ध्वनि से उसका पृथक् किया जाना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि यदि ऐसा न किया जाए अर्थात् जिह्वा कण्ठ आदि से न लगे तो अकार-ध्वनि किसे हटावे वा जिह्वा लगे पर अकार-ध्वनि न हटावे तो जिह्वा हटे कैसे? तात्पर्य यह है कि उक्त दोनों ही कार्य हों तभी व्यंजनों की उत्पत्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं। सो यह प्रकार अकार अक्षर के उच्चारण में नहीं है। अर्थात् न उसे अपने स्थान में जिह्वा के संयोग की आवश्यकता है न किसी वर्णात्मक ध्वनि की सहायता की। उसे तो केवल आत्मा से मन द्वारा प्रेरित प्राणवायु का ही उसके स्थान में आना यत्किंचित् प्रयत्न का होना ही पर्याप्त है। बस, जैसे यह उच्चारणरूप स्वयं प्रकाशमान है वैसे ही इससे नीचे लिखे नाम अवगत हुए समझिए—स्वतः ही प्रकाशित, सर्वप्रकाशक, ज्योतिःस्वरूप, स्वयंसिद्ध, स्वयम्भू, सर्वभावयिता, चेतनस्वरूप, विज्ञानशक्तिदाता और तेजःस्वरूप इत्यादि व विराडादि।

सप्तम अर्थ के निर्विकारीत्व में हेतु

यहाँ इस अर्थ में अकार अक्षर के स्वभाव को ही हेतु, निमित्त वा कारण समझिए, क्योंकि कुछ अक्षर व शब्द इस प्रकार के होते हैं कि उनमें परिणाम का विकार कुछ नहीं होता, अर्थात् वे अपने स्वाभाविक स्वरूप को छोड़ दूसरे रूप में वर्तमान नहीं होते।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

 Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसीलिए ऐसे अक्षरों वा शब्दों को, जो सदैव स्वरूपस्थ बने रहते हैं, अव्यय कहा जाता है। सो अकार अक्षर उन्हीं अव्यय अक्षरों में से है जिनका कि स्वरूप परिवर्तित नहीं होता। परन्तु यदि ऐसी शंका हो कि क्यों नहीं होता तो इसके उत्तर में यही कहना पड़ेगा कि उनका स्वभाव ही ऐसा है, अर्थात् जिनका जो निजी स्वभाव होता है वे उसी में रहा करते हैं कभी दूसरे स्वभाव में नहीं बदलते। अव्यय क्योंकि स्वभाव से ही विकाररहित हैं इसी लिए उनपर ऐसी शंका होना कि विकार क्यों नहीं होता, ठीक नहीं, और सच पूछिए तो क्यों, कैसे, क्योंकर इत्यादि प्रश्नात्मक जो शब्द हैं, सबका व्यवहार केवल वस्तु के नैमित्तिक लक्षणों तक ही हुआ करता है। इससे आगे अर्थात् जहाँ बात स्वभाव पर आ ठहरती है वहाँ इनका प्रयोग सार्थक नहीं। क्योंकि स्वभाव पर किये हुए प्रश्न का हेतु-सहित उत्तर नहीं हुआ करता। जैसे कोई यह पूछे—'अग्नि गरम स्वभाव क्यों है, जल शीतल स्वभाव क्यों है, प्रकृति जड़ और जीवेश्वर चेतन क्यों हैं' तो बतलाइए सिवाय इसके कि इनका स्वभाव ही ऐसा है और क्या उत्तर दिया जाय? कुछ नहीं। बस, बहुत बढ़ाने से क्या है, तात्पर्य यह कि जिस तरह अग्नि आदि स्वभाव से ही उष्णत्वादि गुणों से युक्त हैं उसी तरह अव्यय शब्दों को भी स्वभाव से ही विकाररहित समझो और ईश्वर के निर्विकारी आदि गुणों का दृष्टान्त होने में अकार अक्षर पर कुछ सन्देह मत रक्खो।

प्रश्न—आप तो कहते हैं कि कुछ सन्देह न रक्खो, यहाँ उलटा और बढ़ ही गया और बढ़ भी क्यों न जाए जबकि आपका लेख ही सन्देहवर्द्धक हो। भला सोचिए तो सही, आपने सभी अव्ययों को निर्विकारी कहा, क्या यह ठीक है? क्या सभी सर्वथा विकाररहित हो सकते हैं? कदापि नहीं, देखिए इकारादि स्वर सभी अव्यय हैं और अव्यय कहलाते हुए भी परिणाम-रहित नहीं। क्योंकि जिस समय ये व्यंजनों के साथ मिलते हैं उस वक्त दूसरे ही रूपों अर्थात् मात्राओं में होकर मिलते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि कभी-कभी इनके स्थान में यकारादि वर्ण भी हुआ करते हैं। क्या यह सब-कुछ परिवर्तन वा परिणाम नहीं? नहीं क्यों, परिणाम तो यह कुछ-न-कुछ होता ही है—बस तो जब इन्हीं में परिणाम हुआ तो इनमें बताया हुआ अकार अक्षर अपरिणामी नहीं हो सकता?

उत्तर—बात यह है कि परिवर्तन वा परिणाम दो तरह से हुआ करता है। एक स्वरूपपरिणाम और दूसरे अवस्थापरिणाम। आपने इकारादिकों में जो परिणाम दिखलाया यह स्वरूपपरिणाम नहीं, यह अवस्थापरिणाम है। यदि इसे स्वरूपपरिणाम मानोगे तो "अव्यय कहलाते हुए भी परिणामरहित नहीं" यह आपका कथन ही ठीक न रहेगा, क्योंकि स्वरूपपरिणामी अव्यय नहीं कहे जा सकते, जब अव्यय ही न कहलाए तब 'अव्यय कहलाते हुए भी' यह बात कहाँ बनी! तात्पर्य यह कि स्वरूपपरिणाम मानोगे तो आपके पक्ष की हानि और यदि नहीं माना तो स्वरूपपरिणाम तो रहा नहीं। हाँ, कदाचित् यहाँ यह कहो कि स्वरूपपरिणाम न सही, जाने दो, अवस्थापरिणाम भी तो परिणाम है? इसका उत्तर यही है कि यह परिणाम भले ही हुआ करे इससे हमारी कुछ हानि नहीं, क्योंकि हमने सभी अव्ययों को निर्विकारी जो कहा यह स्वरूप से जिनमें परिणाम नहीं होता उन्हीं को कहा है और यहाँ इस परिणाम में भी वस्तु का अपना निजी रूप अन्य रूप में नहीं बदलता, अर्थात् इस अवस्थापरिणाम के होते हुए भी अवस्था-परिणामी स्व-स्वरूप में ज्यों-के-त्यों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बने रहते हैं, कुछ भी अदल-बदल वा परिवर्तन नहीं हुआ करता। बस जब स्वरूप ही नहीं बदला [और यही अव्ययों का लक्षण है] तब यह परिणाम भी हमारे पक्ष का बाधक सिद्ध नहीं हुआ वरन् यह एक ऐसी रहस्यपूर्ण शिक्षा से युक्त है जो कि हमारे ही पक्ष की प्रबल पोषक है। वह यह कि इकारादि अवस्थापरिणामी हैं तभी तो इनमें से उकार अक्षर जीव-वाची नियुक्त हुआ, क्योंकि जैसे जीव स्वारूपिक विकारी न होकर अवस्थापरिणामी है वैसे ही उकार भी अपने से पूर्व-परवर्ती वर्णोंसहित स्वरूप से विकारयुक्त नहीं। निष्कर्ष यह कि इकारादि वर्ण अवस्थापरिणामी हैं न कि स्वरूप से, और अकार अक्षर तो दोनों तरह विकारी नहीं।

प्रश्न—अकार अक्षर को निर्विकारी कहा यह ठीक नहीं, क्योंकि कभी तो इसको एकारादि रूप विकार होते हैं, कभी यह अर्द्धाकार हो जाता है और कभी-कभी जहाँ-तहाँ लुप्त ही होता रहता है। क्या यह सब-कुछ नहीं होता ? यदि कहो होता है तो विकारी अवश्य हुआ, फिर इसे निर्विकारी क्यों कहा ? जब विकारी हुआ तो ब्रह्म के निर्विकारी आदि गुणों का जाननेवाला कैसे हो सकेगा ? बस, अधिक क्या कहूँ ! सच पूछो तो यह सप्तम लक्षण अकार अक्षर का ब्रह्म से कुछ मिला नहीं ?

उत्तर—नहीं, यह लक्षण ऐन ठीक मिलता है, इसके मिलने में तनिक भी न्यूनता नहीं। न्यूनता हो भी क्यों जबकि अकार अक्षर में कुछ भी विकार नहीं। मानो या न मानो आपका विचार ही अपूर्ण है जो आपको इसमें विकार प्रतीत होता है। देखिए, अकार और इकार दोनों के वा केवल अकार अक्षर के स्थान में एकारादि रूपान्तर जो होते हैं यह कोई विशेष विकार नहीं, क्योंकि एकारादि में अकार अक्षर जो विद्यमान है वह अकार ही अकार के स्थान में हुआ समझिए। उदाहरणार्थ 'ए' को ही ले लीजिए, अब यदि यह अकार व इकारादि दोनों के स्थान में हुआ तो इसमें की 'इ' तो 'इ' के स्थान और अकार 'अ' के स्थान में समझना चाहिए। ऐसे ही ओकारादि की व्यवस्था है। अथवा केवल अकार के स्थान में एकार आदि होंगे तो भी एकारादिस्थ अकार ही अकार के स्थान में होगा, ऐसा समझना, क्योंकि बिना अकार के अन्य अक्षर की अकार से समता नहीं। अब भला सोचिए तो सही, पानी में पानी वा दूध में दूध ही मिल जाना क्या कुछ विकार हुआ ? यदि नहीं तो ऐसे ही अकार अक्षर के स्थान में अकार का हो जाना विकार कुछ भी नहीं।

प्रश्न—अच्छा, तो अर्द्धाकार वा सर्वथा ही लुप्त हो जाना, यह तो विकार होना टल नहीं सकता ?

उत्तर—नहीं, यह भी विकार आदि कुछ नहीं है, क्योंकि अकार अक्षर न कभी अर्द्धाकार होता और न कभी लुप्त ही होता है, वह तो सदा एकरस नित्य वर्तमान रहता है। हाँ, शब्द-सौन्दर्य, माधुर्य वा उसकी लाघवता के लिए अकार ध्वनि का न्यून उच्चारण वा सर्वथा ही उच्चारण न करना इत्यादि व्यवहार तो होते हैं, पर ऐसे व्यवहारों के होने से अकार अक्षर का लुप्त होना आदि न समझना चाहिए। प्रतीत होता है कि 'ऽ' इस चिह्न को देखकर अर्द्धाकार के भ्रम में आप पड़ गये, पर यह अनुच्चरित वा न्यून उच्चरित अकार अक्षर की निशानी है न कि अर्द्धाकार की। क्योंकि जब अक्षरों का यह लक्षण कि जिनका विभाग न हो सके वे अक्षर कहलाते हैं तो फिर अकार अक्षर का अर्द्ध विभाग मानना कहाँ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

की बुद्धिमत्ता है ? सुतराम् अकार अक्षर किसी तरह भी विकारवान् नहीं है। इसीलिए इससे शुद्धस्वरूप, अपरिणामी, निराकार, निर्विकार, निर्लेप, निरंजन, अविद्या-अज्ञानशून्य, मल-क्लेशरहित, निष्काम, अकाम, अजर, अमर, अजन्मा और निष्पाप इत्यादि नाम ब्रह्म के प्रकाशित होते हैं। यह संक्षेप से अकार अक्षर के अर्थ और उनसे प्रकाशित ब्रह्म नाम लिखे गए। अब आगे उकारार्थ लिखेंगे, उन्हें भी देखिए।

प्रथम उकार और जीव का मध्यवर्तीयत्व

प्रश्न—उकार मात्रा के अर्थों के सदृश ही जीव शब्द के अर्थ भी दिखलाइए जिससे आपकी यह प्रतिज्ञा कि उकार से जीव प्रकाशित होता है, सिद्ध होवे ?

उत्तर—प्रथम तो उकार और जीव दोनों के अर्थ की समता या सादृश्य अन्तर्वर्ती होने में है, क्योंकि जैसे उकार मध्यवर्ती है वैसे ही जीव भी मध्यवर्ती है अर्थात् इनको यों समझिए कि जिस प्रकार उकार अक्षर ओंकार की अकार और मकार दोनों मात्राओं के मध्य में स्थिति रखता है अथवा ह्रस्व मूलरूप स्वरों के अन्दर भी यह बीच में ही विराजमान है। ह्रस्व स्वर पाँच हैं—अ, इ, उ, ऋ और लृ। न इनसे अधिक हैं न न्यून। सच पूछो तो यही पाँच स्वर हैं। अन्य स्वर यदि कुछ हैं भी तो वे इन्हीं में से दो-दो मिलकर एक-एक बन गये हैं जो दीर्घ कहे जाते हैं, अन्यथा मूलरूप तो यही पाँच स्वर कहलाते हैं। अब तुम देखते हो कि उकार अक्षर इनके अन्दर भी बीच में ही स्थित हुआ सुशोभित है। बस, ठीक इसी प्रकार से जीवात्मा को समझो, क्योंकि यह भी सूक्ष्म स्थूलरूप ब्रह्म प्रकृति के मध्य अवस्थावाला है। यहाँ इसकी मध्य अवस्था गुण, स्वभाव आदि द्वारा ली गई है। यथा—ब्रह्म सर्वज्ञ, प्रकृति अज्ञ और जीवात्मा न सर्वज्ञ न अज्ञ अर्थात् अल्पज्ञ है; ब्रह्म अपरिणामी, प्रकृति परिणामिनी और जीव न अपरिणामी न परिणामी अर्थात् स्वरूप से अपरिणामी और अवस्थापरिणामी है; ब्रह्म सुखस्वरूप, प्रकृति दुःखस्वरूप और जीवात्मा न सुखस्वरूप न दुःखस्वरूप अर्थात् ब्रह्म-उपासना से सुखी और प्रकृति-निमित्त करके दुःखी हुआ करता है, इत्यादि गुणों से जीवात्मा भी ब्रह्म और प्रकृति के अन्तर्गत मध्य अवस्थावर्ती है। यह उकार और जीव के प्रथम अर्थ की समता हुई। द्वितीय अर्थ आगे देखिए।

द्वितीय उकार और जीव से भिन्न वस्तु-ज्ञान

द्वितीय उकार अक्षर से दूसरी वस्तु का बोध होता है, क्योंकि इसमें दो भाव ऐसे हैं कि जिनसे दूरस्थ भिन्न द्रव्य का ही ज्ञान हुआ करता है। एक तो यह कि उच्चरित होते वक्त उकार-ध्वनि मुँह से निकलकर उपरि-ओष्ठ के कारण ऊपर ही अनन्त आकाश में न जाने कहाँ दूर चली जाती है। दूसरे उकारोच्चारण समय आप-से-आप मालूम होने लगता है कि यह आगे को निकला हुआ मुँह किसी अपने से भिन्न दूरस्थित किसी (दूसरे) का संकेत कर रहा है। सो इन्हीं दोनों भावों के अनुसार उकार अक्षर के 'ऊपर' 'दूर' 'वह' 'अन्य' इत्यादि अर्थ लिये गए हैं। इतना ही नहीं बल्कि उकार अक्षर सम्बोधन में भी आता है। और आप जानते हैं कि सम्बोधन में सदा भिन्न वस्तु का ही संकेत हुआ करता है। बस, जैसे यह भिन्न वस्तु-सम्बोधक है वैसे ही जीव भी ज्ञातृत्वेन अर्थात् ज्ञाता होने से ही

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भिन्न वस्तु-परिचायक है, क्योंकि यदि ज्ञेय वस्तु पृथक् न होती अर्थात् ज्ञेय वस्तु होती ही नहीं तो जीव जानता ही किसे ? और विना जाने ज्ञाता होना वनता नहीं। जैसे विना दृश्य के द्रष्टा नहीं कहा जाता वैसे ही विना ज्ञेय के ज्ञाता नहीं कहला सकता; पर जीव ज्ञाता है क्योंकि वेदादि सच्छास्त्रों के **"मितमेधा" "ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्"** इत्यादि पदों में अनेक ऋषि-महर्षियों ने जीवात्मा को चेतनस्वरूप अर्थात् ज्ञाता ही वर्णन किया है, अतः यह सिद्ध हुआ कि ज्ञेयवस्तु जो इसके ज्ञातापने से ही सिद्ध होती है पृथक् अवश्य है। इस प्रकार से उकार और जीव के द्वितीय अर्थ की तुलना समझी गई है, जो युक्ति-युक्त है। तृतीय अर्थ पर आगे चलिए।

तृतीय उकार और जीव के उन्नतावनत रूप

तृतीय जिस तरह उकार अक्षर की अकार के साथ सन्धि होकर ओकार-रूप उन्नति होनी व मकार से संयुक्त नीचे मात्रा-रूप में आना अधःपतन समझा गया है, ठीक इसी प्रकार जीवात्मा की हालत जान पड़ती है। परन्तु इसकी हालत जानने से पहिले यहीं एक बात और समझ लीजिए। वह यह कि उकार अक्षर से अकार प्रथम ही रहेगा तभी उकार की उत्क्रोन्नति हुआ करती है। अन्यथा यदि मकार मात्रा पहिले रही तो उन्नति नहीं। तब तो वही नीचे आनारूप अवनति होगी यथा—अ+उ=ओ वा म्+उ=मु। यहाँ देखिये, अकारपूर्वक ही उकार अक्षर ओकार-रूप में हुआ है, अन्यथा मकार के प्रथम रहने पर नहीं। मकार के प्रथम रहने से तो बल्कि नीची अवस्था में ही अर्थात् 'म्' के नीचे आना पड़ा। तात्पर्य यह कि उकार अक्षर का अकार के साथ सम्बन्ध होने में उन्नति और मकार के साथ गिरावट हुआ करती है। अब चलिए इसीके समान देखिए जीव की अवस्था किससे मिलती है अर्थात् जीवात्मा का जब ब्रह्म के साथ ज्ञानरूपी सम्बन्ध होता है तभी उसके ज्ञानादि गुणों की अभिवृद्धि होकर सर्व-बन्धनों से छुटकारा हुआ करता है; यही जीव की उन्नति वा तद्विपरीत प्रकृति में विशेष लिप्त रहना ही अधोगति है। यहाँ इतना और भी स्मरण रखिए कि जैसे अकार अक्षर के प्रथम रहने पर ही उकारोन्नति हुई, वैसे ही जीव भी ईश्वर को जाननारूपी सामने अर्थात् प्रथम रक्खेगा तभी उसकी उन्नति और उसे सुख होगा, नहीं तो जैसे मकार के प्रथम रहने पर उकार की जो दुर्गत हुई अर्थात् मात्रा-रूप में नीचे आना पड़ा जोकि अधम अवस्था है, वैसे ही यदि प्रकृति प्रथम रहेगी और ईश्वर को चिन्तन-स्मरणरूपी अभिमुख न किया तो जीव की उन्नति नहीं वरन् प्राकृतिक भोगवासनारूपी रस्सियों से बँधा हुआ जीवात्मा उस अक्षय आनन्द से, जो ईश्वरोपासना से मिलता है, वंचित ही रहेगा।

प्रश्न—क्यों जी ! यह तो वतलाइये जबकि अकार और उकार दोनों मिलकर ही एक ओकार-रूप वनता है, पुनः उकार की उन्नति में ही ओकार को क्यों समझ लिया वा अकार की उन्नति में नहीं समझा यह क्यों, इसमें क्या कारण है ?

उत्तर—जो अपने स्वाभाविक निजी रूप में स्वतः ही उन्नतिस्वरूप है उसके लिए उन्नति हुई वा उन्नति क्यों नहीं होती ऐसा कहा वा पूछा जाना बिल्कुल नहीं वनता। क्योंकि नैसर्गिक पूर्णोन्नत की उन्नति ही क्या ? उन्नति उसीकी हुआ करती है जो उन्नत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

 Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

होने से पूर्व उन्नति-शून्य हो और यह भी तब हो सकेगी जबकि अपने से अधिक उन्नति-वाले के साथ सम्बन्ध होगा। परन्तु अकार क्योंकि सर्व अक्षराधार, सर्व अक्षरव्यापी, नित्य, एकरस-वर्तमान इत्यादि लक्षणों से स्वतः ही पूर्ण उन्नतिस्वरूप है और इससे अधिक अन्य है भी नहीं कि जिसके सम्बन्ध से इसकी कुछ और उन्नति हो, इसीलिए अकार की उन्नति में ओकार को न समझ उकारोन्नति में ही समझा जाना चाहिए और यह है भी ठीक क्योंकि उकार नैमित्तिक उन्नतिशील और अपने से अधिक उन्नतिवाले अर्थात् अकार के साथ सम्बन्धी हुआ अतएव उकार की उन्नति में ही ओकार का दिखलाया जाना सर्वथा युक्ति-युक्त है।

प्रश्न—तो फिर ओकार के अन्दर वह कौन-सी बात है जिससे कि यह उकार की उन्नति में लिया गया?

उत्तर—वह यही है कि अकार से मिलकर जब उकार अक्षर 'ओ' इस रूप में होता है और इसका भी 'ो' यह रूप जब व्यंजनों में मिलता है तब मानो सबको अपने नीचे दबा काबू में कर सबके सिर पर सवार हुआ अर्थात् वश में किये हुए प्रतीत होता है।

उदाहरण के लिए आदि व्यंजन ककार को ही देख लें, अर्थात् 'क्' के साथ जब 'ो' यह रूप संयुक्त होगा तब 'को' ऐसा रूप होता है और यह सभी व्यंजनों के साथ इसी भाँति मिलेगा। अब देखिए सचमुच ककारादिक 'ो' इस रूप से दबे हुए-से ही तो हैं। सो यही ओकार के अन्दर विशेषता है और इसीलिए यह उकार की उन्नति में लिया गया। परन्तु स्मरण रखिए, यह सर्व व्यंजनवशित्व उकार अक्षर में तभी तक है जबतक कि इसका अकार के साथ सम्बन्ध है। यदि यह सम्बन्ध न रहे और केवल अपने ही रूप में स्थित उकार अक्षर व्यंजनों से मिले तब तो इसे सर्वोपरित्व से हाथ धो लेना पड़ता है, क्योंकि उस समय व्यंजनों के ऊपर न वर्तकर सब के नीचे ही मात्रारूप में जैसाकि 'म्' के साथ ऊपर दिखाया जा चुका, आना पड़ता है। बस, हू-ब-हू यही दशा जीवात्मा की जानो अर्थात् जिस भाँति अकार-मकार के साथ सम्बन्ध होने से उकार की उन्नति-अवनति हुई इसी प्रकार ब्रह्म-प्रकृति के साथ सम्बन्ध से जीव की हुआ करती है। क्योंकि जीवात्मा जब ब्रह्म की उपासना करके शक्तिशाली या शक्तियुक्त होता है तब यह प्राकृतिक पदार्थों में आसक्त नहीं होता, वरन् विविध भाँति अनेकानेक गगन-विमानादि कला-कौशल निर्माण कर उनसे लाभ उठाता और प्रकृति-विजयी होता है। परन्तु यह याद रखिये, जीव की उन्नति, मुक्ति या उसका प्रकृति-विजयी होना ये सब बातें तभी हो सकती हैं जब कि जीव परमेश्वर की उपासना किये हुए होगा। अन्यथा यदि ईश्वरोपासना से रहित प्रकृति में विलिप्त रहा तो उन्नति नहीं। तब तो बल्कि शक्तिहीन, परतन्त्र, पराधीन अर्थात् प्रकृतिवश हुआ अनेकविध दुःखी होगा। यह उकार और जीव का तृतीय समानार्थी होना सिद्ध हुआ, चौथी समता आगे देखिए।

चौथे उकार और जीव में अवस्थापरिणाम

चौथे उकार अक्षर में कुछ-कुछ विकार अर्थात् परिणाम भी हुआ करता है, क्योंकि यह कभी ओकार में और कभी वकार में परिणत हो जाता है। जब इससे ब्रह्मस्थानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अकार पूर्व में रहेगा तब यह ओकार में वा इसके अतिरिक्त अन्य स्वर इससे परे हुए तो यह वकार में परिवर्तित हो जाता है। यथा—अ+उ=ओ, या उ+आ=वा। पर देखना, बात एक और भी हुआ करती है वह यह कि ओकारादि से पुनः उकार होना भी पाया जाता है और वकार से फिर उकार होना जो है इसे सम्प्रसारण कहते हैं। बस, जैसे यह उकार अक्षर में यत्किंचित् परिणाम है अर्थात् अवस्थापरिणाम है, यही दशा जीवात्मा की है, क्योंकि जीवात्मा भी ब्रह्म-प्रकृति के सम्बन्ध से अवस्थापरिणामी या नैमित्तिक गुणयुक्त हो जानेवाला है, अर्थात् ब्रह्मध्यान से ब्रह्म के गुणों-सा और प्रकृति की उपासना से प्राकृतिक गुणवत् जीवात्मा स्वशक्ति से हो जाता है, परन्तु सर्वांश में नहीं।

परिणाम विभागों पर एक प्रश्नोत्तर

प्रश्न—क्यों जी! स्वरूपपरिणाम और अवस्थापरिणाम इन दोनों में परस्पर क्या अन्तर है, यह तो बतलाइए?

उत्तर—स्वरूपपरिणाम उसे कहते हैं कि जिस वस्तु की जैसी आकृति, जैसा रूप-रंग व जिस प्रकार के गुण, स्वभाव आदि हैं, या यूँ कहो कि जो वस्तु जिस स्वरूप में है, उसका अपने निजीरूप से सर्वथा परिवर्तन हो जाना अर्थात् पूर्वरूप से बदलकर किसी अन्य रूप में प्रतीत होना। उदाहरणार्थ खरबूजे को ही ले लीजिए। देखिए, खरबूजा आँख, नाक और जीभ इन इन्द्रियों को कैसा प्रियकर सुखद प्रतीत होता है, परन्तु उसीको अच्छी तरह चबा-चबाकर खाये जाने और उसके मलरूप हो बाहर आने पर वही पहिले-सा भला नहीं मालूम होता क्योंकि जो रंग-रूप व गुण आदि खाने से पूर्व था वह पश्चात् नहीं रहा। बस, यह खरबूजे के दृष्टान्त में जैसा परिणाम हुआ अर्थात् स्वरूप से सर्वथा ही बदल गया, ऐसे ही परिणामों को स्वरूपपरिणाम कहा जाता है। अवस्थापरिणाम वह कहलाता है कि जिसमें वस्तु का अपना निजी रूप न बदलकर किसी दूसरी वस्तु के सान्निध्य मात्र से नैमित्तिक गुणयुक्त हो जाना। उदाहरण यहाँ स्फटिक मणि का ले लीजिए। देखिए, स्फटिक मणि में उसकी अपनी स्वाभाविक जो श्वेतता है वह तो ज्यों-की-त्यों रहती ही है, उसमें तो कमी-बेशी होती नहीं। परन्तु फिर भी सूर्य आदि किसी विशेष चमकीली वा पृथिव्यादि मलिन वस्तुओं के निमित्त से उसमें चमकीलापन या मलिनता भी हुए बगैर नहीं रहती। पर यह विशेष चमकीलापनादि स्वाभाविक नहीं, नैमित्तिक है, निमित्त न रहने पर नहीं रहता। चमकीली आदि वस्तुओं के कारण स्फटिक में अधिक स्वच्छतादि जो परिणाम हुए, ऐसे ही ऐसे परिणामों को अवस्थापरिणाम समझिये यही इन दोनों में परस्पर अन्तर है।

उकार पर परिणामविषयक प्रश्नोत्तराणि

प्रश्न—उकार अक्षर में जो परिणाम है उसको आपने अवस्थापरिणाम बतलाया, परन्तु यह ठीक नहीं। क्योंकि जब उकार अक्षर ओकार तथा वकार में सर्वथा ही बदल जाता है और यही स्वरूपपरिणाम कहा गया, पुनः इसे स्वरूपपरिणाम न कहकर अवस्था-परिणाम बतलाना क्या यह सरासर दिनदहाड़े मोटी भूल नहीं? यदि यह कहो कि नहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

भूल नहीं, यह अवस्थापरिणाम ही है तो आपका स्वरूपपरिणाम-लक्षण ठीक नहीं रहा, क्योंकि वह भी तो इसी लक्षण से युक्त है। इसलिए वह भी अवस्थापरिणाम कहा जाना चाहिए। तात्पर्य यह है कि यदि अवस्थापरिणाम मानोगे तो स्वरूपपरिणाम पृथक् नहीं। अथवा स्वरूपपरिणाम लोगे तो उकार अक्षर के अवस्थापरिणामी न रहने के कारण इससे साध्य जीवात्मा-अवस्थी सिद्ध न होगा। बस बहुत क्या कहें, या तो जीवात्मा को अवस्था-परिणामी मानना छोड़ो या उकार अक्षर में यथावदवस्थापरिणाम दिखलाओ। दोनों बातों में से एक अवश्य होनी चाहिए। अन्यथा लेखस्थ भाव मानने योग्य नहीं ?

उत्तर—उकार अक्षर में आपको जो स्वरूपपरिणाम प्रतीत हुआ यह थोड़ी-सी आपके विचार की न्यूनता है। यदि यह न्यूनता न होती और सात्त्विक स्थिरबुद्धि से कुछ भी विचार कर लेते तो उक्त प्रश्न ही न उठाना पड़ता, क्योंकि वास्तविकता स्वयं समझ में आ जाती। पर किया क्या जाय जबकि आप विचार ही न करें अथवा करें तो उलटा करें तब समझ में कैसे आए। खैर! यह तो हुआ सो हुआ, पर देखिए आश्चर्य की बात, या इसे त्रुटि कहें, एक और भी तो आप कर बैठे। वह यह कि हमने अपने पक्ष की पुष्टि में जो हेतु दिया वही हेतु आपने अपने पक्ष की सिद्धि में दे दिया। भला इतना तो सोच लेते कि एक ही हेतु परस्पर दो विरुद्ध पक्षों को सिद्ध भी कर सकता है वा नहीं। कदाचित् यहाँ यह कहो कि आपके पक्ष को सिद्ध नहीं करता, हमारे को तो ठीक-ठीक सिद्ध करता है तो मैं आपसे पूछता हूँ कि वह किस तरह सिद्ध करता है, बतलाइए ?

प्रश्न—देखिए किसी वस्तु का अपने निजी रूप से अन्य रूप में हो जाना, यह जो स्वरूपपरिणाम है सो यह हमारे दिये हुए हेतु में सम्यक्तया संघटित है, क्योंकि यदि नहीं घटता तो ओकार व वकार के अन्दर, जो दोनों ओर से हेतु में दिये गए हैं, उकार कुछ-न-कुछ दिखलाई देता। परन्तु अब नाममात्र को भी तो शक्ल नहीं दीखती। तो बोलिए, यह हमारा ही तो पक्ष सिद्ध हुआ, न कि आपका ?

उत्तर—वाह जी वाह! यही तो आपकी विचार-न्यूनता है। देखिए आपने मूल ध्वनियों को मुख्य अक्षर न समझकर 'अ' 'इ' 'उ' इत्यादि कृत्रिम शक्लों को ही अक्षर समझ लिया। और जब ओकारादि के अन्दर उकार-ध्वनि की 'उ' यह शक्ल न दीखी तब झट से स्वरूपपरिणाम कह उठे। सो यह समझ ठीक नहीं, क्योंकि उक्त आकृतियाँ मुख्य अक्षर नहीं कही जातीं। वरन् उनकी मूलध्वनियों को ही मुख्य अक्षर कहते हैं "**नक्षरन्ति इति अक्षराः**" अर्थात् जिनका नाश नहीं होता वही अक्षर कहे जाते हैं। अब इस अर्थ के अनुसार उक्त आकृतियाँ नहीं हैं, कारण यह कि वे नष्ट होती रहती हैं। परन्तु मूल ध्वनियाँ नष्ट नहीं होतीं, वे विनाश से रहित हैं। इसीलिए उन्हीं को मुख्य अक्षर समझिए जैसाकि महाभाष्यकार पतञ्जलि आदि ऋषियों ने भी समझा।

प्रश्न—अच्छा यही सही, लो मानता हूँ। इससे हमारा तो हेतु अहेतु रहा ही, परन्तु आपका भी सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि आपका सिद्ध तब हो सके जबकि उकार-ध्वनि ओकारादि के अन्दर ज्यों-की-त्यों हो और यह है नहीं, चाहें बोलकर देख लें। जब उकार-ध्वनि ओकारादि में नहीं तब हेतु ही क्या, अवस्थापरिणाम भी नहीं रहा। चलिए दोनों बराबर हुए ?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उत्तर—"ओकारादि के अन्दर उकार ध्वनि नहीं है" यह जो आपने कहा, यह कतई ठीक नहीं, क्योंकि ओकार तथा वकार के अन्दर उकार-ध्वनि ज्यों-की-त्यों विद्यमान है। आप कैसे कहते हैं नहीं है? देखिए, जब अकार और उकार दोनों मिलकर ही ओकारादि रूप बने हैं, पुनः अकारादि ध्वनि के अतिरिक्त अन्य ध्वनि उनमें कहाँ से आवे? क्या कार्य में कारण-गुणों के अतिरिक्त भी गुण मानोगे? यदि यह स्वीकार नहीं अथवा कारण के ही गुण कार्य में होते हैं, यही ठीक है तो फिर ओकार एवं वकार के अन्दर, जिनका कि उपादान-कारण उक्त अकार-उकार ही हैं, उकार-ध्वनि से क्यों इन्कार? यह ठीक नहीं। बस, भ्रम में पड़ क्यों हिचकिचाते हो? ओकार आदि के अन्दर उकार-ध्वनि अवश्य विद्यमान है। "नहीं है" यह नहीं हो सकता।

प्रश्न—स्पष्ट तो कुछ प्रतीत होती नहीं, आप अपने पक्ष की सिद्धि के लिए खेंचा-तानी भले ही करते रहो?

उत्तर—नहीं-नहीं, जैसी बात है वैसी ही कही जा रही है, इसमें खेंचातानी की कौन-सी बात है? और आपने जो यह कहा कि "स्पष्ट तो कुछ प्रतीत होती नहीं" यह बिल्कुल ठीक है, इसको मैं भी मानता हूँ। पर इसका यह आशय न निकाल लेना कि सर्वथा ही नहीं मानता है। नहीं, मानता हूँ पर विशेष स्पष्ट नहीं है इसको स्वीकारी करता हूँ। विशेष स्पष्ट क्यों नहीं? इसका कारण है अकार-ध्वनि से मिली हुई होना अर्थात् कोई वस्तु सिर्फ अपने ही गुणों से जिस प्रकार की प्रतीत होगी वैसी अन्य वस्तु से सम्बन्धित होने पर नहीं होती, क्योंकि उस समय दूसरी वस्तु के गुणों ने भी तो अपना प्रभाव दिखाना है। उकार-ध्वनि अकार के साथ सम्बधित हुई है इसी से उसमें अस्पष्टता आ गई, परन्तु उसने अपने निजी रूप को नहीं छोड़ा। और सच पूछिए तो यह विशेष स्पष्ट न होना ही हमारे पक्ष को सिद्ध करता है। क्योंकि उकार-ध्वनि एकाएकी अपने ही स्वरूप में स्पष्ट उच्चरित होती अथवा ओकार तथा वकार के अन्दर परिणत न हुआ करती तो नैमित्तिक न कहला सकती। और जब नैमित्तिक ही न कहलाई तब अवस्थापरिणाम भी न कहा जाता। क्योंकि अवस्थापरिणाम में नैमित्तिक होना अनिवार्य है। अतएव उकार-ध्वनि का स्पष्ट न होना हमारे पक्ष का साधक है, बाधक नहीं।

प्रश्न—अच्छा तो यहाँ एक बात और बता दीजिए, वह यह कि ओकार तथा वकार ये दोनों रूप, जोकि उकार-ध्वनि के अवस्थापरिणाम कथन किये हैं, सिर्फ एक अकार-ध्वनि के ही साथ उकार-ध्वनि का सम्बन्ध होकर किस तरह उत्पन्न हो सके? क्योंकि जब हम लोक में यह बात देखते हैं कि कोई भी वस्तु दो भिन्न-भिन्न वस्तुओं से सम्बन्धित हुए बिना द्विविध गुण-परिणाम नहीं दिखाती तब आपकी उकार-ध्वनि एक अकार से ही मिलकर ओकारादि दो परिणाम कैसे दिखा सकी? यह तो बिल्कुल ही असम्भव बात है। देखिए न, वायु जब अग्नि के अणुओं को साथ लेकर अर्थात् उनसे मिली हुई चलती है तब गरम और जब पानी के अणुओं से संयुक्त हुई बहती है तब ठण्डी प्रतीत होती है। सो यह गरम और ठण्डापन दो विभिन्न द्रव्यों अर्थात् अग्नि और जल के योग से ही हवा में लिया गया है। अब हवा को नैमित्तिक कहो या अवस्थापरिणामी, दो परिणामों से युक्त कही जा सकती है। क्योंकि दो द्रव्यों का योग उसके साथ हुआ है। बस, इसी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भाँति ओकारादि द्विपरिणामों के लिए उकार-ध्वनि का अलग-अलग दो ध्वनियों से युक्त होना अत्यन्त आवश्यक है। अन्यथा दो परिणाम हो नहीं सकते ?

उत्तर—परिणाम तो ओकार तथा वकार ये दोनों हैं ही, इससे तो इन्कारी किसी की होनी नहीं, क्योंकि सब वैयाकरणों ने स्वीकार किया है, अन्य किसकी सामर्थ्य है जो इन्कार करे ? और जो कोई करे भी अर्थात् यह कहे कि ये परिणाम नहीं हैं तो तुम उनसे कहो कि अच्छा "नहीं हैं," न सही, इससे हमारी कोई जिद नहीं। पर तुम यह तो बतलाओ कि ओकार और वकार ये जो द्विरूप हैं सो मूल ध्वनियों में से तो हैं नहीं, क्योंकि एक-एक स्थानी नहीं। और उन मूल ध्वनियों से मिलकर जो ध्वनियाँ बनती हैं जिन्हें परिणाम कहा गया उन्हें आप इन्कार कर चुके। बस, अब तीसरी प्रकार के कोई अक्षर नहीं जिनमें से कि ओकारादि को माना जाय। अर्थात् यहाँ यह सिद्ध हुआ कि यह ओकारादि अक्षर ही नहीं है। जब यही बात है तो इनसे बननेवाले नामों को क्या आप अपनी दुम से सिद्ध करोगे ? किस तरह सिद्ध करोगे ? अरे, कौन ऐसा माई का लाल है जो उक्त परिणामों को स्वीकार न कर ओंकार, वायु, गो इत्यादि शब्दों को सिद्ध कर सके ? कदापि नहीं, यह कतई नहीं हो सकता। इसलिए इनके अस्तित्व और परिणाम में यदि सन्देह हो तो यह तो बिल्कुल रखिए ही नहीं।

प्रश्न—इस बात का हमें इन्कार नहीं कि ओकारादि परिणाम नहीं हैं। नहीं, परिणाम तो ये हैं इसमें सन्देह नहीं। परन्तु एक ध्वनि के साथ दूसरी का सम्बन्ध होकर दोनों से एक ही परिणाम होना चाहिए ? आपने दो दिखा रखे हैं यह ठीक नहीं ?

उत्तर—किसी एक द्रव्य के साथ अन्य जितने द्रव्यों का युगपत् वा कालान्तर में संयोग होता रहता है उतने ही प्रकार का उससे नैमित्तिक गुण या अवस्थ-परिणाम प्रकट हुआ करता है। इस प्रकार का जो आपका विचार है, सो यह विचार और इस विचार की पुष्टि के लिए वायु आदि के दृष्टान्त का दिया जाना दोनों बिल्कुल ठीक हैं, इनमें असत्य कुछ नहीं। परन्तु स्मरण रखिए ये द्रव्यविषय में ही ठीक हैं, गुणविषय में ठीक नहीं। द्रव्यविषय में ठीक इसलिए हैं कि दो या अधिक द्रव्यों के पारस्परिक मिश्रण होने में उनके गुण भी मिश्रित प्रतीत हुआ करते हैं, क्योंकि जिनके गुणी मिले-जुले हों, पुनः उनके गुण क्यों न उसी प्रकार के हों ? अवश्य होते हैं। पर यह बात गुणों में नहीं घट सकती, कारण कि केवल गुण बिना अपने गुणी के सम्बन्धित नहीं होते। इसलिए आपका उपर्युक्त सहेतूदाहरण ओकारादि द्विपरिणाम-बाधक नहीं।

प्रश्न—यह गुण-गुणी का क्या झगड़ा खड़ा कर दिया, जो बात बतानी चाहिए थी वह अभी आपने छुई नहीं ? देखिए, प्रश्न तो यह था कि एक अकार-ध्वनि के ही साथ उकार-ध्वनि का सम्बन्ध होकर ओकारादि दो परिणाम कैसे हो गये ? सो इसपर कुछ बतलाना चाहिए था, न कि इधर-उधर जाते ?

उत्तर—न कहीं हम इधर-उधर गये और न गुण-गुणी प्रकरणान्तर है, बात वही बताई जा रही है जो साध्य विषय है। ध्यान तो दीजिए, जब आपने वायुद्रव्य अर्थात् गुणी का दृष्टान्त देकर शब्द=गुण पर घटाना चाहा तो यह कैसे संघटित हो सकता है ? क्योंकि जिस तरह द्रव्यों का परस्पर संयोग-सम्बन्ध या व्याप्य-व्यापक-सम्बन्ध हो सकता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है उस तरह निरे गुणों का नहीं हो सकता। इसलिए कि गुण गुणी से पृथक् नहीं होते; जब पृथक् ही नहीं हुए तब उनका सम्बन्ध क्या ? और यहाँ तो शब्द-(ध्वनि)-गुण भी एक है जो अपने गुणी आकाश में नित्य, सर्वत्र व्याप्त है, इसलिए भी सम्बन्ध नहीं बनता। हाँ, इतनी बात तो निस्सन्देह होती है कि वही शब्द स्थान, प्रयत्न भेदों के कारण अनेक अक्षरों (ध्वनियों) में भिन्न-भिन्न प्रतीत होने लगता है। अर्थात् कण्ठस्थान से जो ध्वनि उत्पन्न होगी वह अकार-रूप और ओष्ठस्थान से उत्पन्न ध्वनि को उकार-रूप कहते हैं। इत्थमेव अनेक ध्वनियाँ उत्पन्न हो जाती हैं किन्तु इन सबका मूल वही एक ध्वनि है जो कथित हुई।

प्रश्न—तो क्या इन ध्वनियों का परस्पर सम्बन्ध नहीं होता ?

उत्तर—यद्यपि ये ध्वनियाँ भिन्न-भिन्न और मिलकर भी उच्चरित होती हैं तथापि आपके दृष्टान्त की नाईं मिलना नहीं होता, क्योंकि आपके दृष्टान्त में अलग-अलग द्रव्यों का मेल है और यहाँ एक ही ध्वनि स्थानादि भेद के कारण भिन्न-भिन्न और मिलाकर भी बोली जाती है। मिलाकर बोली जाने में कोई और ध्वनि उसके साथ मिलने के लिए नहीं आ जाती, किन्तु उसी को दो स्थानों से बोल देना 'मिलाकर बोली जाना' कहा गया। उदाहरणार्थ ऊपर दिखाई हुई ध्वनियों को ही ले लीजिए। देखिए, जब ब्रह्मस्थानी अकार-ध्वनि प्रथम और उकार-ध्वनि को परे रख, दोनों का एक साथ तत्क्षण ही उच्चारण कर देवें तब ओकाररूप ध्वनि उत्पन्न होती है। सो यह कण्ठ और ओष्ठ दोनों स्थानों से उत्पन्न हुई समझिए। परन्तु इसके अतिरिक्त जब उकार-ध्वनि प्रथम और अन्य सभी स्वर, केवल उकार को छोड़कर क्योंकि वह प्रथम आ लिया, परे हुए तो उकार-ध्वनि वकार-रूप में आ रहती है। यही उसका सबसे निचला अवनति का रूप है। बस, इस प्रकार से ओकारादि दो परिणाम सिद्ध हुए। और यही क्यों ! आपकी सब शंकाओं के उत्तरानन्तर यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि ओकारादि के अन्दर उकार-ध्वनि और उकार-ध्वनि में अवस्थापरिणाम अवश्यमेव अवस्थित है, अर्थात् निष्कर्ष यह निकला कि उकार अक्षर अवश्य ही अवस्थापरिणामी है। इसमें अब कुछ भी ननुनच नहीं। चलिए अब इसीके समान जीवात्मा की दशा देखिए।

जीव का अवस्था-परिणामी सिद्ध होना

जिस प्रकार से उकार अक्षर अकार से मिलकर उत्कृष्ट, उन्नति इत्यादि अर्थों को लिए हुए 'ओ' इस रूप में होता है और इस रूप में होकर अपने को अन्य नहीं—दूसरा नहीं, वही अर्थात् अकारवत् अथवा अकार ही समझने लगता है, उसी तरह से जीवात्मा भी ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल कर्म करता हुआ तदुपासनारूप ब्रह्म से मिलकर त्रिगुणातीत, कैवल्य इत्यादि अर्थों से युक्त हुआ 'निर्वाण' इस पद को प्राप्त होता है और इस पद को पाते ही अपने को कुछ अंशों में ब्रह्म-सा अनुभव करके "मुक्तौ ब्रह्मरूपता" अथवा "अहं ब्रह्मास्मि" इत्यादि भावों से युक्त हो जाता है। यद्यपि ये भाव असम्भव-से प्रतीत होते हैं तथापि सर्वांश में असम्भव नहीं, कुछ अंश में सत्य अवश्य हैं। इनका अन्यत्र विस्पष्टीकरण करेंगे, यहाँ वर्णन प्रकरणान्तर्गत नहीं। सो इस प्रकार से उकार अक्षर और जीव की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

 Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उन्नतावस्था हुआ करती है। परन्तु इसके अतिरिक्त जब उकार अक्षर एक अकार को ही नहीं वरन् अन्य सभी स्वरों को अपने से पीछे—परे हटाकर अभिमानयुक्त भावों से सन्नद्ध हुआ प्रथम, आदि या मुखिया आप बन बैठता है तब यह 'व' इस रूप में आ रहता है और इस नूतन रूप में हुआ अपने को व्यञ्जनों में ही समझने-समझवाने लग जाता है। बस, इसी प्रकार से जीवात्मा भी जब अन्य जीवों को अपने से अधिक तो क्या, अपने जैसा भी व ईश्वर को नहीं मानता है या उसकी आज्ञा का ही उल्लंघन कर नित्य प्रकृति में आसक्त मानता है तब यह वृक्षादि स्थावर-पर्यन्त अनेक भोग-योनियों में आता है, अपने को प्रकृति के रूप-सा ही युवा, वृद्ध, काला, पीला, गोरा इत्यादि नानारूपों में, जोकि इसके निजी रूप भी नहीं हैं, समझने-समझवाने लग जाता है। इस प्रकार से उकार अक्षर और जीव इन दोनों की सबसे निकृष्ट अवनति की अवस्था समझी गयी है। यह चतुर्थ अर्थ-समता सिद्ध हुई। अब एक पाँचवीं और दिखाकर इस प्रकरण को समाप्त करते हैं।

पाँचवें उकार और जीव में स्वयं प्रकाश

पाँचवें उकार अक्षर में स्वयं प्रकाशित होना अर्थ भी विद्यमान है क्योंकि यह उन वर्णों में से है जिनका कि स्वयं उच्चारण हुआ करता है, अर्थात् स्वर-वर्णों में से समझो। स्वर-वर्णों का यह लक्षण किया है **"स्वयं राजन्त इति स्वराः"** अर्थात् जिनका स्वयं उच्चारण होता है वे स्वर कहलाते हैं, उकार अक्षर स्वरों में है ही, इसलिए इसका भी स्वयं उच्चारण हुआ करता है। और जैसे अन्य स्वरों की सहायता से व्यंजनों का उच्चारण होता है, बिना स्वरों की सहाय के नहीं होता, वैसे ही उकार अक्षर से हुआ करता है, क्योंकि यह भी तो स्वरों में है। तात्पर्य यह है कि उकार अक्षर के स्वर होने से इसका स्वतः ही उच्चरित होना तथा अन्य व्यञ्जनों के, जिनमें कि इसका योग हो, प्रकाशित होने में सहायक होता है। बस, ठीक इसी प्रकार जीवात्मा को समझो क्योंकि यह भी चेतनस्वरूप होने से स्वयं प्रकाशमान तथा अन्य स्वनिर्मित वस्तुओं का प्रकाशक भी है, इत्यादि अर्थ 'उ' के 'जीव' और 'जीव' के 'उ' से मिलने के कारण ही जीव वस्तु-वाच्य की उकारमात्रा ही वाचक हो सकती है। यह संक्षेप से उकार अक्षर के अर्थ और इनसे समता रखनेवाले जीवार्थ दिखाये गये। अब आगे मकारार्थ लिखते हैं सो देखिये।

प्रश्न—नहीं, मकारार्थ अभी न लिखिये, यहीं एक शंका और उत्पन्न हो गयी प्रथम उसे समझा दीजिए, वह यह कि अकार अक्षर के तृतीय और षष्ठ इन अर्थों में तो आपने अकार अक्षर की ही सहायता से सर्व वर्णों की उत्पत्ति या उनका प्रकाशित होना लिखा, परन्तु अब यहाँ कुछेक अक्षरों का असहाय स्वयमुच्चरित होना लिखते हो, यह पूर्वापर विरोध क्यों? देखिए, यदि पूर्वोक्त अर्थों के लेखस्थ भाव सही हैं तो यहाँ कुछ अक्षरों का स्वयम्-उच्चरितपन लिखा जाना ठीक नहीं। और यदि यहाँ का स्वयम्-उच्चरितपन लिखा जाना ठीक है तो पूर्वोक्त सत्य नहीं, क्योंकि परस्पर दो विरुद्ध बातों में से एक के अतिरिक्त दूसरी ठीक नहीं हुआ करती। सो ऐसी-ऐसी परस्पर-विरुद्ध बातें लिख पाठकों को संशय में न डालें?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उत्तर—यहाँ और पूर्व जो कुछ लिखा गया है, दोनों जगह कहीं भी गलती नहीं है, सब ठीक लिखा गया; और न कहीं पूर्वापर-विरोध है न परस्पर-विरुद्धता, मामला बिल्कुल सही है। हाँ, यह माना कि साधारणतया मोटे विचारों से देखा जाय तो विरोध मालूम होता है, परन्तु वास्तव में विरोध नहीं है। माऽस्तु, अच्छा किया यहाँ आपने यह प्रश्न उठा लिया, नहीं तो सचमुच पाठकों को भ्रम रहता। लीजिए अब इसका भेद खोल देते हैं। देखिए, जिस तरह से चेतन-पद परमपिता परमेश्वर और जीव दोनों के लिए प्रयुक्त होता है उसी तरह से स्वर शब्द भी ब्रह्मस्थानी अकार और जीवस्थायी 'इ' से 'औ' पर्य्यन्त सब वर्णों के लिए व्यवहृत है और जैसे ईश्वर ने जीवों या उनकी चेतनता को उत्पन्न नहीं किया बल्कि स्वरस्थानी चेतनत्व गुण से अनादि स्वतः ही सिद्ध हैं वैसे ही अकार अक्षर ने भी इकारादि वर्णों या उनके स्वरत्व को उत्पन्न नहीं किया अपितु स्वरत्व तो स्व-स्व स्थान में ही विवृत प्रयत्न के कारण स्वयमेव सिद्ध है। हाँ, जिस प्रकार सर्वव्यापी परमेश्वर ने अपने अन्दर स्थित हुई प्रकृति और जीवों की विद्यमानता ही केवल जगत्रूप में प्रसिद्ध कर दी और प्रसिद्धि करते किसी को प्रकट तक नहीं होता उसी प्रकार इकारादि सकल ध्वनियाँ भी सर्वव्यापी अकार अक्षर में स्थित हुई सिर्फ वर्णभाव को प्राप्त अर्थात् प्रकटमात्र होती हैं। ईश्वर के कर्तृत्व की तरह ही अकार अक्षर की सहायता भी इकार आदि में किसी को कुछ प्रतीत नहीं होती। मतलब यह है कि अकार अक्षर के तृतीय और षष्ठ इन दोनों अर्थों में अथवा अन्य जहाँ भी कहीं अकार अक्षर की ही सहायता से सर्व वर्णों की स्थिति व उनका प्रकाशित होना जो लिखा गया सो वह इस विचार से लिखा है कि अकार अक्षर ही सब अक्षरों में आदि व व्यापक होने से सबका मूलाधार है और अन्य सब ध्वनियाँ आधेय अर्थात् अकार के आश्रित, स्थित हैं। अब विचार तो कीजिए, यदि मूल ध्वनि ही विद्यमान न हो वा विद्यमान हो पर व्यापक न हो तो अन्य ध्वनियों की, जोकि एकदेशी हैं, स्थिति कहाँ? जब स्थिति ही नहीं तब प्रसिद्धि कैसी? इसलिए सर्व अक्षराधार व सर्वव्यापी होने के कारण ही अकार अक्षर को सर्वव्यापक अर्थ में लिया है और इसी में उसका प्रकाशकत्व भी आ लिया।

प्रथम मकार और प्रकृति में अन्तिमता

प्रश्न—अच्छा अब मकारमात्रा के अर्थ कीजिए और वही अर्थ प्रकृति में दिखलाइए जिससे आपकी पूर्वोक्त प्रतिज्ञा कि मकार से प्रकृति गृहीत होती है, सिद्ध हो?

उत्तर—प्रथम अर्थ तो मकार अक्षर में अन्तिमपना समझ लीजिए, क्योंकि यह स्थानभेद से सम्पूर्ण अक्षरों में अन्तिम अक्षर है। दूसरे यों भी समझ लें कि वर्णमाला के आदि में जब एक अक्षर अर्थात् अकार को लिया है तब अन्त में कोई अक्षर अवश्य होना चाहिए, क्योंकि जिसका आदि हुआ करता है उसके अन्तिम होने की तो सर्वथा ही निश्चित बात है। हाँ, समझना अब यह है कि कौन-सा अक्षर अन्त में लिया जाए क्योंकि अक्षर बहुत हैं। सो हमारी समझ में तो यही आता है कि मकार अक्षर ही लिया जाना चाहिए। कारण इसमें यह है कि जिस प्रकार आदिस्थान (कण्ठ) से उत्पन्न होने के कारण ही अकार अक्षर को आदि में लिया गया उसी प्रकार से मकार अक्षर को अन्त में लिया जाए

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

 Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

क्योंकि यह भी तो अन्तिम स्थानी है अर्थात् वर्णों के उच्चारणार्थ मुख के अन्दर कण्ठ, तालु आदि जितने भी स्थान हैं उन सबमें अन्तिम स्थान ओष्ठ और तालुगत नासाछिद्र हैं। इन्हीं दोनों से मकार अक्षर का उच्चारण हुआ करता है। जब यही दोनों आखिरी स्थान और इन्हीं से मकार अक्षर का उच्चारण है, तब तो 'म' के अन्तिम होने में किसी को भी लवांश सन्देह न होना चाहिए, क्योंकि जिसके उत्पन्न होने की जगह अन्तिम है उसके आखिरी होने में संशय ही क्या ? मतलब यह कि 'म' के अन्त में कोई अक्षर नहीं है, मकार ही अन्तिम अक्षर है। बस, जिस तरह से मकार अक्षर में अन्तिमता है उसी तरह से प्रकृति को समझिए अर्थात् प्रकृति भी अनादि त्रिपदार्थों में स्थूल-रूप अन्तिम समझी गई है। परन्तु इतना स्मरण रहे कि काल से अन्तिम नहीं, केवल गुणपेक्षया। सो इस विध मकार और प्रकृति दोनों के अर्थों का समतुल होना लिया गया। द्वितीय अर्थ समता आगे देखिए।

द्वितीय मकार और प्रकृति में आधेयत्व

दूसरे मकार अक्षर में आधेय अर्थात् स्वाश्रित न रह सकना अर्थ भी विद्यमान है, क्योंकि यह उन वर्णों में से है जिनका कि उच्चरित होना रूपी अस्तित्व अन्याश्रित है अर्थात् व्यञ्जन वर्णों में से समझिए क्योंकि उन्हीं में इसका पाठ आया है। व्यञ्जन वर्णों का यह लक्षण है—**"अन्वग्भवति व्यञ्जनमिति"** अर्थात् स्वर जिनके अन्त में होता है या बिना स्वर के जिनका उच्चारण नहीं हो सकता वे व्यञ्जन कहाते हैं। सो मकार अक्षर व्यञ्जनों में लिया ही गया, इसलिए इसका भी स्वराधीन उच्चारण हुआ करता है। अभिप्राय यह है कि मकार अक्षर स्वयमुच्चरित रूप स्वाश्रित नहीं है, प्रत्युत स्वर की सहायता से उच्चरित होना रूपी आधेय अर्थयुक्त लिया गया। यद्यपि यहाँ उक्त लक्षण में व्यञ्जनों के प्रकाशन व उनकी स्थिति के लिए अकार व इकारादि सभी स्वरों को लिया है तथापि, मुख्य रूप से तो अकार अक्षर को ही लिया समझिए, क्योंकि यह आदि व व्यापक होने के कारण सभी वर्णों का आधार अर्थात् व्यञ्जनों की तो कथा ही क्या, इकार आदि स्वरों का भी सयुक्तिक आश्रय सिद्ध हो चुका है। इसलिए प्रधानरूप से तो अकार अक्षर ही सर्व अक्षराधार है। हाँ, गौणरूप से इकारादिक भी व्यञ्जनों का आधार होने में ले रक्खे हैं परन्तु फिर भी मुख्यरूप से अकार अक्षर को ही लिया गया, क्योंकि यह इकारादि का भी निर्धारक अर्थात् स्वाश्रय में रखनेवाला है। बस, ठीक इसी प्रकार के अर्थ को लिये हुए प्रकृति विद्यमान है अर्थात् प्रकृति को भी सर्व आधेय पदार्थों में परिगणित होने वा सर्वव्यापी न होने किंवा एकदेशी और जड़ होने के कारण ही आधेय-रूप जानो, अर्थात् चेतन के आश्रित स्थित हुई समझो। पर हाँ देखना, एक बात यहाँ और भी स्मरण रखिए! वह यह कि जिस तरह से व्यञ्जनों का आधार स्वर हैं और स्वरों में भी मुख्य करके अकार अक्षर को ही लिया गया, उसी तरह से जड़स्वरूप प्रकृति का आधार चेतन और चेतनों में भी प्रधान-रूप से ब्रह्म को ही समझना, क्योंकि ब्रह्म सर्वव्यापक होने से सभी को स्वाश्रय में रख लेने की शक्ति से युक्त है। हाँ, रहा जीवों के आधार होने में हेतु सो वह इस प्रकार से है कि जीव भी ब्रह्मरचित सृष्टि में अनेक शरीरों का धारण, नियमन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और संचालन किए हुए हैं, क्योंकि जीव चेतन और शरीर सब जड़ हैं। किं बहुना, सारांश यह है कि व्यञ्जनों या व्यञ्जनों के अन्दर स्थित हुई मकारवत् प्रकृति भी स्वाश्रित नहीं है बल्कि मुख्य करके सर्वव्यापी, चेतनस्वरूप अर्थात् ब्रह्म के आश्रित स्थित है। इस प्रकार द्वितीय अर्थ का साम्य समझिए।

तृतीय मकार और प्रकृति का विकृत धर्म

तृतीय मकार अक्षर में परिणाम या विकार भी होता रहता है, क्योंकि यह कभी तो अपने कारण में हो जाता है और कभी कारण से पुनः कार्य्य में आ जाता है। मकार अक्षर का कारण ' ं ' यह अनुस्वार है, इसी से इसकी उत्पत्ति हुआ करती है (इस बारे में कुछ विशेष जानने की इच्छा है तो "अक्षर विज्ञान" नामक ग्रन्थ का तृतीय प्रकरण देखिए। यहाँ अधिक लिखा जाना ठीक नहीं, क्योंकि यह एक व्याकरण का अलग विषय है जो व्याकरण के ही ग्रन्थों में लिखा देखा जाना चाहिए) सो 'म्' का 'अनुस्वार' वा 'अनुस्वार' का 'म्' हो जाना रूप मकार अक्षर में विकारार्थ लिया गया। यह ठीक भी है क्योंकि जिन अक्षरों (व्यञ्जनों) में यह परिगणित वा सधर्मी है वे सभी विकारी अर्थात् एक-दूसरे में बदल जानेवाले हैं। इसलिए मकार भी परिणामी अर्थात् अन्यरूप होने में किञ्चित् हिचक नहीं रखता। तात्पर्य यह कि जिस तरह से मकार अक्षर परिवर्तनशील है उसी तरह से आप प्रकृति को समझ लेवें, क्योंकि प्रकृति भी परिणामिनी या विकृत हो जानेवाली है या यों समझिए कि हमेशा अदलती-बदलती ही रहती है अर्थात् कारण से महत्तत्व आदि कार्य में वा कार्य से पुनरपि कारण में परिवर्तित हो जाती है। इसी कारण विकारधर्मिणी समझी गयी। लेकिन यहाँ एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। वह यह कि जिस तरह से अकार अक्षर सर्वथा अपरिणामी है उसी तरह से तद्विपरीत मकार सर्वथा परिणामी है। रहा उकार अक्षर, सो यह स्वरूप से अपरिणामी और अवस्थापरिणामी लिया गया। परन्तु उकार-मकार के अर्थानुकूल ही इनके सहधर्म्मी अक्षरों के अर्थ भी जान लेना। बस, हू-ब-हू इन्हीं के अर्थानुसार इनके वाच्यार्थ ब्रह्म आदि पदार्थों को समझिए अर्थात् जिस भाँति अकार शब्दवाच्य ब्रह्म सर्वथा अपरिणामी है उसी भाँति तद्विरुद्धधर्म्मिणी मकार शब्द-वाच्य प्रकृति सर्वथा परिवर्तनशीला है तथा वैसे ही उकार शब्दवाच्य जीव भी स्वरूप से अपरिणामी और अवस्थापरिणामी है। बस, इस भाँति मकार अक्षर और प्रकृति इनके तृतीय अर्थ की तुलना होने में कुछ कमी नहीं, लक्षण दोनों के बिल्कुल मिल गये। चलिए अब एक चौथी अर्थ-समता और दिखला दें।

चौथे मकार और प्रकृति में माप-तुलितादित्व

चौथे मपना या मापना जो अर्थ है सो यह भी मकार मात्रा में विद्यमान है, क्यों-कि इससे बने हुए 'मा' धातु में यही अर्थ पाया जाता है और पाया भी क्यों न जाए जब कि शब्द-तत्त्ववित् महामुनि पाणिनि ने भी अपने धातुपाठ में यही अर्थ लिया। यथा— 'मा माने' अर्थात् 'मा' धातु मिनने अर्थ में आता है। बस, जिस तरह से मिननादि अर्थ मकार अक्षर में विद्यमान हैं उसी तरह से मित, तुलित आदि धर्म भी प्रकृति से प्रकृति में ही घटते हैं, किसी अन्य पदार्थ में नहीं, इत्यादि मकार और प्रकृति के अर्थों का सादृश्य होने से ही मकार मात्रा से प्रकृति गृहीत हुई। सो इस प्रकार इस ओंकार से ब्रह्म, जीव और प्रकृति ये तीनों पदार्थ अभिव्यक्त होते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक विशेष संशय और उसका परिहार

प्रश्न—क्यों जी ! ओम् नाम की दूसरी विशेषता में तो आपने यह लिखा कि "ओ३म् नाम जो है यह परमेश्वर का ही वाचक है, इसका वाच्यार्थ विना ईश्वर के दूसरी कोई वस्तु नहीं" पुनः इससे जीव और प्रकृति, जोकि भिन्न सत्तावान् पदार्थ हैं, क्यों ग्रहण किए ? क्या यह अपने ही लेख के विरुद्ध लेख वा व्याघातदोष नहीं ?

उत्तर—नहीं, इसमें व्याघातदोष नहीं, न पूर्वापर लेख ही विरुद्ध है। यदि कुछ भी विचारकर देखें तो विषय धूप-सम विस्पष्ट है। देखिए, जिन लेखों पर आपको शंका उत्पन्न हुई उनका सार यह है—यद्यपि ओम् नाम जो है यह सर्वांश में समुच्चयरूप से ब्रह्मवाची है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। परन्तु फिर भी इस बात पर ध्यान रक्खो कि जब यह ओम् पृथक्-पृथक् अर्थात् अ, उ और म् इन तीन अक्षरों में विभक्त होता है तब केवल ब्रह्मवाचक ही नहीं रहता, तब तो अकार से ब्रह्म का, उकार से जीव का और मकार से माया-प्रकृति का ग्रहण होता है। हाँ, अकारादि तीनों अक्षर संयुक्त हुए उच्चरित-रूप से केवल ब्रह्मवाची है, इसमें कुछ ननुनच नहीं।

प्रश्न—तो क्या अलग-अलग अकारादि सब मात्राओं से ब्रह्म प्रकाशित नहीं होता ? यदि कहो होता है तो अकार से ही ब्रह्म का ग्रहण क्यों कहा, यह बतलाइए ?

उत्तर—बात यह है कि संयुक्त हों वा विभिन्न, अकारादि तीनों ही मात्रायें ब्रह्म के अनेक गुण, कर्म, स्वभावों का प्रकाश करती हैं। परन्तु फिर भी जिस समय उकार से जीव व मकार से प्रकृति को समझा-समझाया जाता है तब ही अकारमात्रा से ब्रह्म-बोधार्थ संकेत किया गया है। अकार से ही क्यों ? यह इसलिए कि अकारमात्रा के लक्षण ही ब्रह्म से कुछ अधिक मिलते-जुलते हैं। वैसे ही उकार से जीव तथा मकार से प्रकृति के लक्षणों की समता भी समझिए। ये सब समतायें अभी पीछे स्पष्टरूपेण वर्णित हुई हैं। पर यहाँ इतना और ध्यान रखिए कि मकारमात्रा में जितने लक्षण हैं उनमें से जो-जो लक्षण ब्रह्म से मिलते-जुलते हैं उनसे तो ब्रह्म और जो प्रकृति से मिलते हैं उनसे प्रकृति प्रकाशित होती है। बस, इसी प्रकार उकारमात्रा से अर्थात् आत्मवत् लक्षणों से आत्मा और परमात्मवत् लक्षणों से परमात्मदेव प्रकाशित होते हैं।

अकारादि मात्रायें और विराट् आदि नाम

प्रश्न—अच्छा, अकारमात्रा और विराट् आदि नाम इनके अर्थों की संगति या समता भी दिखलाइए।

उत्तर—ब्रह्म शब्द के अर्थों के साथ जो अकारार्थ दिखला चुका हूँ वही यहाँ विराडादि नामार्थों के साथ भी समझिए, क्योंकि विराट् शब्द का अर्थ स्वयं प्रकाशमान तथा विविध प्रकार से सर्वजगत्प्रकाशक, अग्नि शब्द का अर्थ ज्ञानस्वरूप, सर्वज्ञ, सर्वत्र प्राप्त होने और पूजा करने योग्य तथा विश्व शब्द का अर्थ व्यापक अर्थात् सब आकाश आदि पदार्थों में प्रविष्ट हुआ ओत-प्रोत हो रहा है। इत्यादि विराट् आदि नामों के अर्थ अकारार्थों के साथ सम्यक्तया समता रखते हैं। सो इसी कारण अकारमात्रा से विराट् आदि नाम भी गृहीत वा प्रकाशित होते हैं।

प्रश्न—उकारमात्रा और हिरण्यगर्भ आदि नाम, इनके अर्थों की परस्पर किस प्रकार तुलना हुई ?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उत्तर—स्वररूपी ज्योतिर्युक्त उकार का मध्यस्थ होना हिरण्यगर्भ नाम को सिद्ध करता है क्योंकि हिरण्य=चमकीले, गर्भ=बीच अर्थात् चमकीले पदार्थ हैं जिसके बीच, उसे हिरण्यगर्भ कहते हैं, सो सूर्य आदि तेजस्वरूप पदार्थ सब ईश्वर के अन्दर उत्पन्न होते और उसी के आश्रय रहते हैं। इसी से वह हिरण्यगर्भ कहलाता है। और उकारवाच्य जीव से जैसे देहेन्द्रियाँ निर्वारित, जीवित और स्थिर रहती हैं वैसे ही उकारवाच्य वायु-नामी ईश्वर भी सब चराचर जगत् का धारण, जीवन और प्रलयकर्त्ता है। तथा तैजस् शब्द के प्रकाशमान आदि अर्थों की तुलना के लिए उकार अक्षर का पञ्चमार्थ वहीं देखिए जहाँ जीव के साथ वर्णन कर चुका हूँ, इत्यादि।

प्रश्न—मकारमात्रा से ईश्वर आदि नाम किस प्रकार गृहीत होते हैं, ये भी सिद्ध करके दिखलाइए?

उत्तर—मकार शब्दवाच्य प्रकृतिरूपी ऐश्वर्य ही ईश्वर नाम को सिद्ध करता है, कारण के विना ईश्वर के ऐश्वर्य नहीं कहा जा सकता। जब ऐश्वर्य है तो उसका ईशन-(शासन)-कर्ता ईश्वर अवश्य कहलायेगा। और जिसका ऐश्वर्य अविनाशी, नित्य हो उसका स्वामी अनित्य हो नहीं सकता, प्रत्युत अविनाशी नित्य ही होता है। इस कारण उसका नाम आदित्य है, क्योंकि आदित्य शब्द के अर्थ भी नाशरहित के होते हैं। तथा वैसे ही मकार शब्दवाच्य प्रकृतिरूप ज्ञेय वा सब चराचर जगत् के व्यवहारों को यथावत् जानता है, इससे ईश्वर का नाम प्राज्ञ है इत्यादि। बस, इस विध अकार आदि मात्राओं से ब्रह्म, विराट् आदि नामों के अर्थ उपलक्षित होते हैं और ऐसे ही अन्य नामार्थ भी समझे जा सकते हैं।

समस्त वाणी और ओंकार शब्द

प्रश्न—इस ओंकार शब्द में अव्यक्त रूप से क्या कुछ और अर्थ भी विद्यमान हैं वा नहीं, यदि हैं तो कुछ और बतलाइए?

उत्तर—हैं तो अवश्य, परन्तु विना मेधा-बुद्धियुक्त ऋषि और योगियों के अन्य क्षुद्रबुद्धि जन इसका गुप्त रहस्य कैसे समझ-समझा सकते हैं? देखिए, प्रायः सब ही तत्त्व-वेत्ता ऋषि-मुनियों ने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की और इसके गाम्भीर्य को अथाहरूप में वर्णन किया है। खैर! विषय है तो कठिन, पर एक रहस्य हम आपको और बतला देते हैं, सो सात्त्विक स्थिरबुद्धि कर समझो। वह इस प्रकार से है कि ओम् शब्द समस्त वाणी के विषयों को अपने अन्तर्गत कर लेता है। वाणी की सीमा कण्ठ, ओष्ठ और तालु-गत नासाछिद्र हैं। कण्ठ (जहाँ से अकार अक्षर का आरम्भ होता है) उसके परे वाणी की गति नहीं है। ओष्ठ (जहाँ से 'उ' का उच्चारण हुआ करता है) उसके आगे भी कोई स्थान नहीं। तालुगत नासाछिद्र (जहाँ से अन्तिम सानुनासिक मकार निकलता है) इससे परे भी स्थानाभाव है। बस, इसी प्रकार से समस्त वाणी की सीमा को अपने भीतर लेकर यह 'ओ३म्' सर्व, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वाधार, सर्वरक्षक, सर्वसहायक, सर्वादिकारण तथा सबमें छिपा हुआ एवं विष्णु आदिक अर्थयुक्त होता है इत्यादि।

इस तरह इस ओङ्कार शब्द से अनेक नामार्थों का प्राकाश्य समझिए। यदि मनुष्य इसका अर्थ विचारपूर्वक मनन करते हुए जप और तदर्थवत् स्वभाव धारण करें तो निस्सन्देह सर्वदुःखों से छूट पूर्णानन्दोपलब्ध कर सकते हैं।

शमित्योम्

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारे नये प्रकाशन

धर्म का स्वरूप —डॉ० प्रशान्तकुमार वेदालंकार ३५.००
एम. ए., पी-एच. डी.

प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान् लेखक ने महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित धर्म के स्वरूप का सरल और सुबोध शब्दों में विवेचन किया है।

ईशोपनिषद् —वे० सा० स्वामी वेदानन्द सरस्वती ४.५०

ईशोपनिषद् का यह भाष्य उर्दू में कई वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था। हिन्दी अनुवाद किया है स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ने।

महकते फूल —सुरेशचन्द्र वेदालंकार, एम. ए. ६.००

बच्चों तथा बड़ों सभी के लिए समानरूप से उपयोगी पुस्तक।

पुनः प्रकाशित पुस्तकें

बहुत दिनों से चारों वेद-शतक समाप्त थे, अब छपकर तैयार हैं।

ऋग्वेदशतकम् —स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ४.००
यजुर्वेदशतकम् ,, ,, ,, ४.००
सामवेदशतकम् ,, ,, ,, ४.००
अथर्ववेदशतकम् ,, ,, ,, ४.००

निम्न पुस्तकें छपकर तैयार हैं

घर में प्राथमिक इलाज करने के लिए उपयोगी पुस्तकें। सभी पुस्तकों के लेखक व संकलनकर्ता हैं श्री सुनील शर्मा।

पुस्तक रूपी फूल के इस गुच्छे पर भूमिका लिखी है स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ने।

घर का वैद्य — नीबू ३.५०
घर का वैद्य — तुलसी ३.५०
घर का वैद्य — पीपल ३.५०
घर का वैद्य — आक ३.५०
घर का वैद्य — सिरस ३.५०
घर का वैद्य — आंवला ३.५०
घर का वैद्य — नीम ३.५०
घर का वैद्य — गन्ना ३.५०
घर का वैद्य — प्याज ३.५०
घर का वैद्य — लहसुन ३.५०

पं० भगवदत्त रिसर्च स्कॉलर द्वारा सम्पादित
सत्यार्थप्रकाश आठ परिशिष्ट, (मोटे अक्षर) सजिल्द। २५.००
सत्यार्थप्रकाश (आर्ट पेपर पर छपी सुनहरी जिल्द) १०१.००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारे लोकप्रिय प्रकाशन

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	५.००
तत्त्वज्ञान	१५.००
मानव और मानवता	२०.००
प्रभुमिलन की राह	१५.००
घोर घने जंगल में	१५.००
प्रभुभक्ति	५.००
महामन्त्र	४.५०
आनन्द गायत्री-कथा	३.५०
उपनिषदों का सन्देश	१०.००
एक ही रास्ता	४.००
मानव-जीवन-गाथा	५.००
सुखी गृहस्थ	३.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	३.००
प्रभु-दर्शन	१२.००
दो रास्ते	१२.००
यह धन किसका है ?	१०.००
भक्त और भगवान्	४.५०
शंकर और दयानन्द	२.५०
बोध कथाएँ	१२.००
Anand Gayatri Discourses	३.००

श्री रणवीर लिखित

आनन्द स्वामी जीवनी (उर्दू)	१०.००

पं० सत्यपाल विद्यालंकार

श्रीमद्भगवद्गीता	८.००

डॉ० भवानीलाल भारतीय

श्रीकृष्ण चरित	२५.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	५०.००
वैदिक संस्कृति का सन्देश	३५.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	१५.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	८०.००
षड्दर्शनम्	५०.००
प्रार्थना लोक	१५.००
प्रार्थना प्रकाश	४.००
प्रभात वन्दन	४.००
वैदिक विवाह पद्धति	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१०.००
चमत्कारी ओषधियाँ	५.००
घरेलू ओषधियाँ	५.००
ऋग्वेद का अक्ष-सूक्त	१.००
दिव्य दयानन्द	३.००
सामवेद सूक्ति-सुधा	१०.००
यजुर्वेद-सूक्ति-सुधा	१०.००
अथर्ववेद सूक्ति-सुधा	१५.००
ऋग्वेद सूक्ति-सुधा	२०.००
आदर्श परिवार	८.००
भक्ति संगीत शतकम्	३.००
सत्यनारायण व्रत कथा	०.५०

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल	२५.००

पं० मदनमोहन विद्यासागर

संस्कार समुच्चय	४५.००
सत्यार्थ सरस्वती	२५.००
ईश्वर प्रत्यक्ष	६.००

प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम	३५.००
मु-राज्य की रूपरेखा	०.५०

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai.

प्रो० विष्णुदयाल (एम० ए०)

वेद भगवान बोले ६.००

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथिवी सूक्त) १.००

श्री रामशरण वशिष्ठ

वेदों में मूल प्रकृति विज्ञान १.५०

पं० विश्वनाथ विद्यालंकार

ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका का एक सरल अध्ययन २.००

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली ८.००

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द (सचित्र) ४.००

पं० रामचन्द्र देहलवी

वेद व्यावहारिक है १.००

वेद का इस्लाम पर प्रभाव १.००

महात्मा नारायण स्वामी

कर्तव्य-दर्पण ५.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ६.००

संकलन

महर्षि दयानन्द के सपनों का आर्यसमाज ५.००

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थप्रकाश २५.००

आर्योद्देश्यरत्नमाला ०.२५

व्यवहारभानु १.००

बालोपयोगी

पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार ०.६०

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.५०

स्वामी श्रद्धानन्द १.५०

गुरु विरजानन्द १.५०

पं० लेखराम १.५०

स्वामी दर्शनानन्द १.५०

पं० गुरुदत्त १.५०

स्वामी दर्शनानन्द

बालशिक्षा-धर्मशिक्षा १.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा प्रथम भाग ०.६०

नैतिक शिक्षा द्वितीय भाग ०.६०

नैतिक शिक्षा तृतीय भाग १.००

नैतिक शिक्षा चतुर्थ भाग १.५०

नैतिक शिक्षा पंचम भाग २.००

नैतिक शिक्षा षष्ठ भाग २.००

नैतिक शिक्षा सप्तम भाग २.००

नैतिक शिक्षा अष्टम भाग २.००

नैतिक शिक्षा नवम भाग २.५०

नैतिक शिक्षा दशम भाग २.५०

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

आर्यसत्संग गुटका १.२५

वैदिक यज्ञप्रकाश ०.७५

पंचयज्ञ प्रकाशिका ३.००

भजन पुस्तकें

भक्ति संगीत शतकम् (संकलन) ३.००

गीत श्रद्धांजलि १.५०

चित्र - चित्र - चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० ३.००

महर्षि दयानन्द एक रंग १८×२२ २.००

गुरु विरजानन्द एक रंग १८×२२ २.००

स्वामी श्रद्धानन्द ,, ,, २.००

स्वामी दर्शनानन्द ,, ,, २.००

म० हंसराज ,, ,, २.००

प्रकाशक-मुद्रक विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नयी सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi